प्रवचनसार महामण्डल विधान

रचयिता :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डी.-लिट्

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 3 हजार प्रतियाँ
(26 फरवरी, 2017)
(स्वर्ण जयन्ती समापन समारोह के अवसर पर)

धन्यवाद

इस विधान के प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय

स्व. पुष्पाबेन कान्तिभाई मोटाणी

एवं

स्व. कल्पनाबेन विपुलभाई मोटाणी

के स्मरणार्थ

मोटाणी परिवार मुम्बई द्वारा
वहन किया गया है

एतदर्थ उन्हें हार्दिक धन्यवाद !

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

- मंगलाचरण 1
1. श्री प्रवचनसार पूजन 3
2. ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पूजन 7
3. ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पूजन 34
4. चरणानुयोगसूचक चूलिका महाधिकार पूजन 62
- महा जयमाला 88
- प्रवचनसार-भक्ति 90

प्रकाशकीय

तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की सशक्त लेखनी से प्रसूत **'प्रवचनसार महामण्डल विधान'** का प्रकाशन करते हुए हम अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं। अगस्त २०१६ में प्रकाशित 'समयसार महामण्डल विधान' की अपार सफलता ने डॉ. भारिल्ल के लिये अब तक अछूती रही इस विधा के नए द्वार खोल दिए हैं।

८२ वर्ष की इस वय में भी अस्वस्थता के बावजूद आपने एक भी दिन के लिए कलम नहीं छोड़ी और मुम्बई में इलाज के दौरान ही इस 'प्रवचनसार महामण्डल विधान' का सृजन कर अपने चहेतों को चकित कर दिया है। आपकी लेखनी से प्रवचनसार जैसा गंभीर विषय भी सरल भाषा में प्रसूत होने से सभी को बहुत लाभ मिलेगा। इस ढलती उम्र में इतनी सक्रियता और वह भी साहित्य के क्षेत्र में कम ही देखने को मिलती है।

तीर्थराज सम्मेदशिखर में टोडरमल स्मारक के स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर जब आपकी कृति 'समयसार महामण्डल विधान' का सस्वर आयोजन किया गया; तब समाज के आबालवृद्ध सभी झूम उठे। वहीं आपसे आचार्य कुन्दकुन्द की अन्य कृतियों पर विधान लिखने का आग्रह किया गया, जिसे आपने सहर्ष स्वीकार किया।

'समयसार महामण्डल विधान' का सृजन कर निश्चित ही डॉक्टर साहब ने लेखन के क्षेत्र में एक अलग छाप छोड़ी है। 'समयसार महामण्डल विधान' तथा इस कृति ने लेखक को विधान लेखन के क्षेत्र में भी अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया है।

आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त हों और नित नूतन सृजन कर हम सबका इसी प्रकार मार्ग प्रशस्त करते रहें – यही पवित्र भावना है। पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने श्रमपूर्वक उत्थानिका व मंत्र बनाने तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य किया है। आपके उक्त कार्य में अच्युतकान्त का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः हम आप दोनों के आभारी हैं।

सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्दजी शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिलजी बंसल को भी धन्यवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि इस विधान के निमित्त से यह विधान करने वाले को सम्पूर्ण प्रवचनसार की विषयवस्तु का सहज ही स्वाध्याय होगा।

वे इसमें वर्णित अपनी शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसके आश्रय से अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें – इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

२० फरवरी २०१७ ई.

– ब्र. यशपाल जैन
प्रकाशन मंत्री

अपनी बात

दशहरे के अवसर पर, दस हजार से भी अधिक जन समूह में, तीर्थराज सम्मेदशिखर पर समयसार विधान को होते देखा तो चित्त प्रसन्न हो गया।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इतना विशाल जनसमुदाय, एक साथ बैठकर, इतनी तल्लीनता से, समयसार जैसे गुरु गंभीर ग्रन्थराज का पाठ कर सकता है, विद्वानों के माध्यम से उसके मर्म को समझ सकता है, मार्मिक बिन्दुओं को स्पर्श कर सकता है।

विधानों में इतनी जिज्ञासा और शान्ति मैंने कभी नहीं देखी थी। मैं भी यह सब देखकर अभिभूत हो गया।

देश के कोने-कोने से इसप्रकार के विधान कराने की माँग आने लगी। अनेकों स्थान पर विधान हुये हैं और हो रहे हैं।

इस सबने मुझे प्रवचनसार विधान लिखने के लिये प्रेरित किया; पर स्वास्थ्य अनुकूल न होने से यह सब संभव नहीं लग रहा था।

मैं शिखरजी से ही इलाज कराने सीधा मुम्बई चला गया। रीड़ की हड्डी का जटिल ऑपरेशन था। महिनों रहना अनिवार्य हो गया। पर बैठना, उठना, चलना-फिरना संभव न था; अतः कुछ लिखना भी संभव नहीं था; पर जैसे भी हुआ, इसी बीच यह काम हो गया, प्रवचनसार विधान लिखा गया; जो आज आपके हाथ में है।

फरवरी १७ के अन्त में पंचकल्याणक के वार्षिकोत्सव एवं स्वर्ण जयन्ती के समापन समारोह के अवसर पर टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में सबसे पहले यह विधान होने जा रहा है। इसके बाद गाँव-गाँव में होगा।

आशा है समयसार विधान के समान यह विधान भी लोगों के चित्त को आकर्षित करेगा।

इस प्रवचनसार ग्रन्थराज में सर्वज्ञता, अनन्तसुख, एवं सत्ता का स्वरूप बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। मुनधर्म के स्वरूप पर भी बहुत बढ़िया प्रकाश डाला गया है और भी अनेक महत्वपूर्ण विषय हैं।

सभी आत्मार्थी भाई-बहिन इसका भरपूर लाभ लें - इस मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

२८ जनवरी २०१७ ई. **- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रवचनसार महामण्डल विधान

मंगलाचरण

(हरिगीत)

नित्य निज में ही रहें पर जानते सम्पूर्ण जग।
हैं वीतरागी पूर्ण पर सबको बताते मोक्षमग।।
यद्यपि अहिंसक पूर्णतः पर घातियों को घात कर।
जो बन गये अरिहंत जिन उनको नमन कर जोड़कर।। १ ।।

हैं अष्ट कर्मों से रहित हैं अष्ट गुण मंडित सदा।
हैं ज्ञानतनु तनरहित अमलानन्त सुख विलसत सदा।।
अनुपम अचल सिद्धायतनथित आयतन से रहित जो।
कर जोड़कर हो नमन अगणित गुणों से हैं सहित जो।। २ ।।

आचार्य पंचाचारयुत जो साधुगण में ज्येष्ठ हैं।
पठन-पाठन निरत पाठक ज्ञानधन में श्रेष्ठ हैं।।
निज आतमा रत साधुगण जो भवजलधि के अन्त हैं।
उन सभी को हो नित नमन जो साधना रत संत हैं।। ३ ।।

(कुण्डलिया)

जिन प्रवचन का सार यह प्रवचनसार महान।
इसके अध्ययन–मनन से प्रगटे आतम ज्ञान।।
प्रगटे आतम ज्ञान भींग जावे निज अन्तर।
निज में ही रम जाय ध्यान जो करे निरन्तर।।
आ जावेगा अन्त अरे उसके भव वन का।
और अधिक क्या कहे सार यह जिन प्रवचन का।। ४ ।।

(रोला)

ज्ञान–ज्ञेय प्रज्ञापन इसमें किया गया है।
और आचरण मार्ग निरूपित किया गया है।।
इन्हें जानकर जीवन इनसे आत्मसात हो।
समझ लीजिए तो निश्चित ही आत्म प्राप्त हो।। ५ ।।

(दोहा)

ज्ञानतत्त्व निज आतमा सब जग जाननहार।
ज्ञेयतत्त्व निज–पर सभी इस जग के आधार।। ६ ।।

इन दोनों के जान लो सब सामान्य–विशेष।
मैं इक आतमराम हूँ पर हैं शेष अशेष।। ७ ।।

इसप्रकार इस जगत से करो भेदविज्ञान।
वस्तुव्यवस्था समझ कर छोड़ो सब अज्ञान।। ८ ।।

(रोला)

यह हितकर उपदेश दिया है कुन्दकुन्द ने।
यह हितकर आदेश दिया है कुन्दकुन्द ने।।
जो पालेगा इसे वही पा लेगा निज को।
पार करेगा वही भयंकर भवसागर को।। ९ ।।

१

प्रवचनसार पूजन

स्थापना

(रोला)

ज्ञान–ज्ञेय प्रतिपादन में तन–मन से अर्पित।
श्रमणों के चरणानुयोग के लिये समर्पित।।
शिवमग दर्शक यह निचोड़ है जिन–आगम का।
प्रवचन का है सार प्राण है परमागम का।। १।।

(दोहा)

पूजन प्रवचनसार की, भक्तिभाव उर आन।
भविजन सब मिल कर रहे, अपनी शक्ति प्रमान।। २।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।
(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रोला)

जल

जीवन में हो परम शान्ति यह भाव समाया।
शुद्ध आत्मा सा निर्मल जल लेकर आया।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। १।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

संसारताप हो शान्त भावना लेकर आया।
इसीलिये तो तपहर शीतल चन्दन लाया।।

प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। २।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत पद तो एकमात्र भव का अभाव है।
अक्षत पद का हेतु मात्र अक्षत स्वभाव है।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ३।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

कामवासना के प्रतीक ये पुष्प मनोहर।
साम्यभाव से आया हूँ मैं इनको लेकर।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ४।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

अरे! विविध व्यंजन खाये पर भूख मिटी ना।
इन्हें समर्पित करता हूँ रख शुद्धभावना।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ५।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

स्वपरप्रकाशक दीपक है अपने स्वभाव से।
आत्मदीप भी स्वपरप्रकाशक है स्वभाव से।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ६।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

परम सुगन्धित धूप जली पर कर्म जले ना।
मेरा है उद्देश्य शुभाशुभ कर्म जलाना।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ७।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

सभी शुभाशुभ भावों का फल भव में रुलना।
शुद्धभाव फल एकमात्र मुक्ति में फलना।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ८।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

अरे अर्घ्य से वह अनर्घ्य पद प्राप्त हुआ ना।
शुद्धभाव से प्राप्त करूँ बस यही भावना।।
प्रवचनसार महान सार है जिनशासन का।
एकमात्र आधार कहा है जिन–आगम का।। ९।।

ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कुन्दकुन्द आचार्य कृत प्रवचनसार महान।
उसकी महिमा का अरे हम करते गुणगान।। १ ।।

(अडिल्ल[१])

ज्ञान–ज्ञेयमय निज आतम आराध्य है।
ज्ञान–ज्ञेयमय आतम ही प्रतिपाद्य है।।
ज्ञान–ज्ञेयमय एक आतमा सार है।
जिनप्रवचन का सार ये प्रवचनसार है।। २ ।।

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? ..... की धुन पर गायें।

लोकालोक प्रकाशित जिनके ज्ञान में।
किन्तु आतमा एक है जिनके ध्यान में।।
भव्यजनों को जिनका एक अधार है।
जिनकी ध्वनि का सार ये प्रवचनसार है।। ३ ।।

उनके वचनों में ही निशदिन जो रमें।
उनके ही वचनों का प्रतिपादन करें।।
कुन्दकुन्द से उन गुरुओं को धन्य है।
उनके सदृश जग में कोई न अन्य है।। ४ ।।

उन्हें नमन कर उनकी वाणी में रमूँ।
जिसमें वे हैं जमे उसी में मैं जमूँ।।
उनके ही पदचिह्नों पर अब मैं चलूँ।
उनकी ही वाणी की मैं पूजन करूँ।। ५ ।।
मेरा यह उपयोग इसी में नित रहे।
मेरा यह उपयोग सतत् निर्मल रहे।।
यही कामना जग समझे निजतत्त्व को।
यही भावना परमविशुद्धि प्राप्त हो।। ६ ।।

(दोहा)

महिमा ज्ञानस्वभाव की, अद्भुत अपरंपार।
सब मिलकर गाते रहें, हो आनन्द अपार।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनसारपरमागमाय जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूजन प्रवचनसार की पूर्ण हुई सानन्द।
करें स्वयं की साधना प्रगटे परमानन्द।। ८ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

२

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

ज्ञान तत्त्व यह आतमा सब जग जानन हार।
अविनाभावी ज्ञान का परमानन्द अपार।। १।।

परम शुद्ध उपयोग से प्रगटें ज्ञानानन्द।
और अशुद्ध उपयोग से मिलता विषयानन्द।। २।।

यह सब प्रतिपादन हुआ इसमें विविध प्रकार।
यह सब जानें बिना तो होंय न भव से पार।। ३।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन-महाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन-महाधिकार!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन-महाधिकार!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। *(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)*

(मानव[१])

जल

यह जल मल शोधक जग में शीतल है अर है निर्मल।
इसको अर्पण कर पग में मैं भी हो जाऊँ निर्मल।।
यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। १।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. ए मेरे वतन के लोगों, जरा आँख में भर लो पानी, की धुन पर गायें।

चन्दन

शीतल चन्दन सम आतम संतप्त हो रहा भव में।
शीतल चन्दन अर्पण कर शीतलता पाऊँ जग में।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। २।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

यह ज्ञानस्वभावी आतम अक्षत है सुख का सागर।
अक्षत पद प्राप्त करूँ मैं अक्षत अक्षत प्रस्तुत कर।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ३।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

ये सुमन सुगन्धित मनहर मन को मोहित करते हैं।
पर गंध न इनमें सुख की इनको अर्पित करते हैं।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ४।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

ये सरस विविध विध व्यंजन भरपूर भखे मैं निशदिन।
पर भूख मिटी न अब तक करता हूँ इनको अर्पण।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ५।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

यद्यपि तम हर दीपक ने नाशा तम घर–आंगन का।
पर नहीं मिटा पाता है यह अंधकार जीवन का।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह धूप दशांगी मनहर अर्पण करता चरणों में।
दशधर्म समाहित होवें जन–जन के आचरणों में।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

आतम में जमूँ रमूँ मैं अन्तर में भाव समाया।
फल नहीं चाहता कुछ भी फिर भी ये फल ले आया।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

यह अर्घ्य अष्टद्रव्यों का समुदाय अनोखा अद्‌भुत।
इसको अर्पण करता हूँ, मिल जावे मुझको शिव पद।।
यह ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन अधिकार महा अद्‌भुत है।
इसमें जो कुछ समझाया वह हितकर है अनुपम है।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली[१]

।। ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार ।।

सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्रदेव तत्त्वप्रदीपिका टीका के मंगलाचरण में तीन कलशों के माध्यम से ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा व अनेकान्त के तेज को नमस्कार करके, टीका लिखने का प्रयोजन प्रकट करते हैं –

(दोहा)

स्वानुभूति से जो प्रगट सर्वव्यापि चिद्रूप।
ज्ञान और आनन्दमय नमो परात्मस्वरूप ।। १ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानानन्दस्वभावी शुद्धात्मने नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। १ ।।

महामोहतम को करे क्रीड़ा में निस्तेज।
सब जग आलोकित करे अनेकान्तमय तेज ।। २ ।।

ॐ ह्रीं अनेकान्त-तेजसे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २ ।।

प्यासे परमानन्द के भव्यों के हित हेतु।
वृत्ति प्रवचनसार की करता हूँ भवसेतु ।। ३ ।।

ॐ ह्रीं तत्त्वप्रदीपिका-प्रतिज्ञावाक्ययुक्त श्री प्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।। ३ ।।

अब, आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित प्रवचनसार की मूल गाथायें प्रारम्भ होती हैं; सर्वप्रथम मूल प्रवचनसार ग्रन्थ के मंगलाचरण में आचार्यदेव, 'श्री वर्द्धमान तीर्थंकर को तथा पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करने के साथ-साथ दर्शन-ज्ञानप्रधान साम्यभाव को प्राप्त करने की बात करते हैं –

(हरिगीत)

सुर असुर इन्द्र नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ।। १ ।।

१. **नोट** – इस विधान में अर्घ्यावली के अन्तर्गत प्रवचनसार की गाथाओं व तत्त्वप्रदीपिका टीका में समागत कलशों के डॉ. भारिल्ल कृत पद्यानुवादों का प्रयोग किया गया है। पाठकगण, इनकी विस्तृत व्याख्या हेतु डॉ. भारिल्ल कृत ज्ञानज्ञेयतत्त्व-प्रबोधिनी टीका का अच्छी तरह अध्ययन करें।

अवशेष तीर्थंकर तथा सब सिद्धगण को कर नमन।
मैं भक्तिपूर्वक नमूँ पंचाचारयुत सब श्रमणजन।। २ ।।
उन सभी को युगपत तथा प्रत्येक को प्रत्येक को।
मैं नमूँ विदमान मानस क्षेत्र के अरहंत को।। ३ ।।
अरहंत सिद्धसमूह गणधरदेवयुत सब सूरिगण।
अर सभी पाठक साधुगण इन सभी को करके नमन।। ४ ।।
परिशुद्ध दर्शनज्ञानयुत समभाव आश्रम प्राप्त कर।
निर्वाणपद दातार समताभाव को धारण करूँ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं मंगलस्वरूप अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु पंचपरमेष्ठीभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

अब, साम्यभावरूप चारित्र के फल का निरूपण करते हैं –

(हरिगीत)

निर्वाण पावैं सुर-असुर-नरराज के वैभव सहित।
यदि ज्ञान-दर्शनपूर्वक चारित्र सम्यक् प्राप्त हो।। ६ ।।

ॐ ह्रीं दर्शन-ज्ञान-प्रधानचारित्रफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५।।

अब, निश्चय चारित्र का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है।
दृगमोह-क्षोभविहीन निज परिणाम समताभाव है।। ७ ।।

ॐ ह्रीं साम्यभावचारित्रप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अब, 'धर्मभाव से परिणत आत्मा ही धर्म है' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जिसकाल में जो दरव जिस परिणाम से हो परिणमित।
हो उसीमय वह धर्मपरिणत आतमा ही धर्म है।। ८ ।।

ॐ ह्रीं धर्मपरिणतात्मप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७।।

अब, 'यह जीव परिणामस्वभावी है' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

स्वभाव से परिणाममय जिय अशुभ परिणत हो अशुभ।
शुभभाव परिणत शुभ तथा शुधभाव परिणत शुद्ध है।। ९ ।।

ॐ ह्रीं शुभ-अशुभ-शुद्धभावरूपपरिणतात्मप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

अब, यह कहा जा रहा है कि 'परिणाम ही वस्तु का स्वभाव है' –

(हरिगीत)

परिणाम बिन ना अर्थ है अर अर्थ बिन परिणाम ना।
अस्तित्वमय यह अर्थ है बस द्रव्यगुणपर्यायमय।। १० ।।

ॐ ह्रीं वस्तुनः परिणामस्वभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९।।

अब, 'शुद्धोपयोगरूप पर्याय से परिणमित आत्मा मुक्ति प्राप्त करते हैं और शुभोपयोगरूप पर्याय से परिणमित आत्मा स्वर्गादि प्राप्त करते हैं' – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा।। ११ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोग-शुभोपयोगफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०।।

अब, अशुभोपयोग के फल के सम्बन्ध में बताते हैं –

(हरिगीत)

अशुभोपयोगी आतमा हो नारकी तिर्यग कुनर।
संसार में रुलता रहे अर सहस्त्रों दुख भोगता।। १२ ।।

ॐ ह्रीं अशुभोपयोगफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११।।

।। शुद्धोपयोगाधिकार ।।

(दोहा)

ज्ञानानन्द अनंत दृग वीरज अपरंपार।
संपादक ज्ञायक सुभग शुद्धोपयोग अधिकार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, शुद्धोपयोग के प्रोत्साहन के साथ-साथ उसे प्राप्त होने वाले वास्तविक सुख को बताते हैं -

(हरिगीत)

शुद्धोपयोगी जीव के है अनूपम आत्मोत्थसुख।
है नंत अतिशयवंत विषयातीत अर अविछिन्न है।। १३ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगीजीवस्य सुखस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२।।

अब, शुद्धोपयोग परिणत आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हैं -

(हरिगीत)

हो वीतरागी संयमी तपयुक्त अर सूत्रार्थ विद्।
शुद्धोपयोगी श्रमण के समभाव भवसुख-दुक्ख में।। १४ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३।।

अब, शुद्धोपयोग के फल में तत्काल प्राप्त होनेवाले शुद्धात्मस्वभाव के लाभ का अभिनन्दन करते हैं -

(हरिगीत)

शुद्धोपयोगी जीव जग में घात घातीकर्मरज।
स्वयं ही सर्वज्ञ हो सब ज्ञेय को हैं जानते।। १५ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगफलसर्वज्ञत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१४।।

अब, यहाँ भगवान आत्मा के स्वयं स्वयंभूस्वभाव को दर्शाते हैं –

(हरिगीत)

त्रैलोक्य अधिपति पूज्य लब्धस्वभाव अर सर्वज्ञ जिन।
स्वयं ही हो गये तातैं स्वयम्भू सब जन कहें।। १६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वयंभुवत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५।।

अब, भगवान आत्मा के व्यय रहित उत्पाद और उत्पाद रहित व्यय करने का महान कमाल बताते हैं –

(हरिगीत)

यद्यपि उत्पाद बिन व्यय व्यय बिना उत्पाद है।
तथापि उत्पाद-व्यय-थिति का सहज समवाय है।। १७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः विनाशरहितोत्पाद एवं उत्पादरहितविनाशस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६।।

अब, यह बताते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तो प्रत्येक वस्तु का सहज स्वभाव हैं –

(हरिगीत)

सभी द्रव्यों में सदा ही हो रहे उत्पाद-व्यय।
ध्रुव भी रहे प्रत्येक वस्तु रे किसी पर्याय से।। १८ ।।

ॐ ह्रीं वस्तुनः उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहजस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वमापीति स्वाहा।।१७।।

अतीन्द्रिय होने से शुद्धात्मा में शारीरिक सुख-दुःख नहीं हैं – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अतीन्द्रिय हो गये जिनके ज्ञान सुख वे स्वयंभू।
जिन क्षीणघातिकर्म तेज महान उत्तम वीर्य हैं।। १९ ।।
अतीन्द्रिय हो गये हैं जिन स्वयंभू बस इसलिए।
केवली के देहगत सुख-दुःख नहीं परमार्थ से।। २० ।।

ॐ ह्रीं अतीन्द्रियात्मनः शारीरिकसुखदुःखाभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८।।

।। ज्ञानाधिकार ।।

(दोहा)

सभी द्रव्य झलकें सदा मनहु आँवला हाथ।
अरे अतीन्द्रियज्ञान में गुण-पर्यय के साथ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

केवली भगवान के ज्ञान में सभी पदार्थ प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होते हैं, उनके कुछ भी परोक्ष नहीं हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

केवली भगवान के सब द्रव्य गुण-पर्याययुत।
प्रत्यक्ष हैं अवग्रहादिपूर्वक वे उन्हें नहीं जानते।। २१ ।।
सर्वात्मगुण से सहित हैं अर जो अतीन्द्रिय हो गये।
परोक्ष कुछ भी है नहीं उन केवली भगवान के।। २२ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः परोक्षाभाव एवं सर्वप्रत्यक्षत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९।।

अब, 'ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, आत्मा ज्ञानप्रमाण है; अतः लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान सर्वगत है' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

यह आत्म ज्ञानप्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है।
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है।। २३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानस्य सर्वगत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०।।

अब, आत्मा को ज्ञानप्रमाण न मानने पर आने वाले दोष बताकर उनका निराकरण करते हैं –

(हरिगीत)

अरे जिनकी मान्यता में आत्म ज्ञानप्रमाण ना।
तो ज्ञान से वह हीन अथवा अधिक होना चाहिए।। २४ ।।

ज्ञान से हो हीन अचेतन ज्ञान जाने किसतरह।
ज्ञान से हो अधिक जिय किसतरह जाने ज्ञान बिन।। २५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः ज्ञानप्रमाणत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१।।

अब, 'ज्ञात के समान आत्मा भी सर्वगत है, जिनदेव भी सर्वगत हैं यह बताते हैं –

(हरिगीत)

हैं सर्वगत जिन और सर्व पदार्थ जिनवरगत कहे।
जिन ज्ञानमय बस इसलिए सब ज्ञेय जिनके विषय हैं।। २६ ।।

ॐ ह्रीं जिनवरस्य सर्वगतत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२।।

अब, 'आत्मा और ज्ञान में कथंचित् एकत्व है और कथंचित् अन्यत्व हैं' यह सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

रे आतमा के बिना जग में ज्ञान हो सकता नहीं।
है ज्ञान आतम किन्तु आतम ज्ञान भी है अन्य भी।। २७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानयोः कथंचित् एकत्व-अन्यत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३।।

अब, दो गाथाओं में यह समझाया गया है कि – यद्यपि ज्ञान ज्ञेयों में प्रवेश नहीं करता और ज्ञेय भी ज्ञान में नहीं आते; तथापि ज्ञान ज्ञेयों में चला गया, या ज्ञेय ज्ञान में आ गया – ऐसा भी कहा जाता हैं –

(हरिगीत)

रूप को ज्यों चक्षु जाने परस्पर अप्रविष्ठ रह।
त्यों आत्म ज्ञानस्वभाव अन्य पदार्थ उसके ज्ञेय हैं।। २८ ।।

प्रविष्ठ रह अप्रविष्ठ रह ज्यों चक्षु जाने रूप को।
त्यों अतीन्द्रिय आतमा भी जानता सम्पूर्ण जग।। २९ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानज्ञेययोः अन्योन्यवृत्तिमन्तरेणापि विश्वज्ञेयाकारग्रहणसमर्थत्व-प्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४।।

अब, दो गाथाओं में 'ज्ञान ज्ञेयों में और ज्ञेय ज्ञान में वर्तते हैं – इसी बात को सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों दूध में है व्याप्त नीलम रत्न अपनी प्रभा से।
त्यों ज्ञान भी है व्याप्त रे निश्शेष ज्ञेय पदार्थ में।। ३० ।।
वे अर्थ ना हों ज्ञान में तो ज्ञान न हो सर्वगत।
ज्ञान है यदि सर्वगत तो क्यों न हों वे ज्ञानगत।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानज्ञेययोः परस्परप्रवेशप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५।।

अब, ''सबको देखते-जानते हुये भी यह आत्मा बाह्य ज्ञेय पदार्थों से भिन्न ही हैं'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

केवली भगवान पर ना ग्रहे छोड़े परिणमें।
चहुं ओर से सम्पूर्णतः निरवशेष वे सब जानते।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः सर्वज्ञत्व-सर्वदर्शित्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६।।

अब, ''केवलज्ञानी और श्रुतज्ञानी में कोई अन्तर नहीं है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

श्रुतज्ञान से जो जानते ज्ञायकस्वभावी आतमा।
श्रुतकेवली उनको कहें ऋषिगण प्रकाशक लोक के।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं श्रुतकेवलिनः आत्मसंचेतनप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७।।

अब, यह कहते हैं कि यदि श्रुत की उपाधि की उपेक्षा करें तो श्रुतज्ञान भी तो ज्ञान ही हैं –

(हरिगीत)

जिनवर कथित पुद्गल वचन ही सूत्र उसकी ज्ञप्ति ही।
है ज्ञान उसको केवली जिनसूत्र की ज्ञप्ति कहें।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं श्रुतज्ञानस्य ज्ञानत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८।।

अब, आत्मा और ज्ञान में कर्त्ता-करण संबंधी भेद का भी निषेध करते हैं –

(हरिगीत)

जो जानता सो ज्ञान आतम ज्ञान से ज्ञायक नहीं।
स्वयं परिणत ज्ञान में सब अर्थ थिति धारण करें।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानयोः कर्तृकरणभेदनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९।।

अब, ज्ञान और ज्ञेय क्या हैं? – यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

जीव ही है ज्ञान ज्ञेय त्रिधावर्णित द्रव्य हैं।
वे द्रव्य आतम और पर परिणाम से संबंद्ध हैं।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञान-ज्ञेयस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३०।।

अब, 'सभी द्रव्यों की अतीत और अनागत पर्यायें भी वर्तमान पर्याय के समान ही ज्ञान में विद्यमान है' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

असद्भूत हों सद्भूत हों सब द्रव्य की पर्याय सब।
सद्ज्ञान में वर्तमानवत् ही हैं सदा वर्तमान सब।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं अतीत-अनागत पर्यायाणां ज्ञाने वर्तमानवत्प्रकाशकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३१।।

अब, दो गाथाओं में यह समझाते हैं कि जिस ज्ञान में भूत और भावी पर्यायें ज्ञात न हो, उस ज्ञान को दिव्य कौन कहेगा' –

(हरिगीत)

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गई हैं।
असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञानप्रत्यक्ष हैं।। ३८ ।।

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गई हैं नष्ट जो।
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानस्य दिव्यत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२।।

अब, दो गाथाओं में यह बताते हैं कि इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष होने से सभी पदार्थों की सभी पर्यायों को एक साथ नहीं जानता; जबकि अतीन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष होने से एक साथ जानता है –

(हरिगीत)

जो इन्द्रियगोचर अर्थ को ईहादिपूर्वक जानते।
वे परोक्ष पदार्थ को जाने नहीं जिनवर कहें।। ४० ।।
सप्रदेशी अप्रदेशी मूर्त और अमूर्त को।
अनुत्पन्न विनष्ट को जाने अतीन्द्रिय ज्ञान ही।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं इन्द्रियज्ञानस्य परोक्षत्व एवं अतीन्द्रियज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३।।

अब, ''ज्ञेयार्थपरिणमन[१] है लक्षण जिसका – ऐसी क्रिया ज्ञान से उत्पन्न नहीं होती'' यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञेयार्थमय जो परिणमे ना उसे क्षायिक ज्ञान हो।
कहें जिनवरदेव कि वह कर्म का ही अनुभवी।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं क्षायिकज्ञानस्य ज्ञेयार्थपरिणमनक्रियानिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४।।

अब, ज्ञेयार्थपरिणमन और उसके फलरूप क्रिया का कारण बताते हैं –

(हरिगीत)

जिनवर कहें उसके नियम से उदयगत कर्मांश हैं।
वह राग–द्वेष–विमोह बस नित बंध का अनुभव करे।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञेयार्थपरिणमनफलक्रिययोः कारणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५।।

अब, यह बता रहे हैं कि 'केवली भगवान के भी विहारादि क्रियायों से भी बन्ध नहीं होता' –

---

१. क्षयोपशमज्ञान में जाने गये ज्ञेय पदार्थों में एकत्व–ममत्व, कर्तृत्व–भोक्तृत्व और उनके लक्ष्य से राग–द्वेषरूप परिणमन ही ज्ञेयार्थपरिणमन है।

(हरिगीत)

यत्न बिन ज्यों नारियों में सहज मायाचार त्यों।
हो विहार उठना–बैठना अर दिव्यध्वनि अरहंत के।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः विहारादिक्रियाणां स्वाभाविकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३६।।

अब, 'तीर्थंकरों के पुण्य का विपाक अकिंचित्कर ही हैं' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पुण्यफल अरहंत जिन की क्रिया औदयिकी कही।
मोहादि विरहित इसलिए वह क्षायिकी मानी गई।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकराणां पुण्यफलाकिंचित्करत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३७।।

अब, 'संसारी जीव तो स्वयं शुभाशुभभावरूप परिणमित होते हैं' यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

यदि जीव स्वयं स्वभाव से शुभ–अशुभरूप न परिणमें।
तो सर्व जीवनिकाय के संसार भी ना सिद्ध हो।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं संसारीजीवाणां स्वाभाविकशुभाशुभपरिणामप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३८।।

अब 'अतीन्द्रियज्ञान का सर्वज्ञता के रूप में अभिनन्दन करते हैं –

(हरिगीत)

जो तात्कालिक अतात्कालिक विचित्र विषम पदार्थ को।
चहुं ओर से इक साथ जाने वही क्षायिक ज्ञान है।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं क्षायिकज्ञानस्य सर्वज्ञत्वप्रशंसक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३९।।

अब यह समझाया जा रहा है कि यदि यह ज्ञान सबको नहीं जानता; तो वह ज्ञान एक अपने आत्मा को भी सम्पूर्णतः नहीं जान सकता –

(हरिगीत)

जाने नहीं युगपद् त्रिकालिक अर्थ जो त्रैलोक्य के।
वह जान सकता है नहीं पर्यय सहित इक द्रव्य को।। ४८ ।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञानाभावे एकद्रव्यस्यपूर्णज्ञानाभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४०।।

अब यह कह रहे हैं कि जो एक अपने आत्मा को भी पूर्णतः नहीं जानता है, वह सबको सम्पूर्णतः कैसे जान सकता है? –

(हरिगीत)

इक द्रव्य को पर्यय सहित यदि नहीं जाने जीव तो।
फिर जान कैसे सकेगा इक साथ द्रव्यसमूह को।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं सम्पूर्णात्मज्ञस्यैव सर्वज्ञत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१।।

अब, दो गाथाओं में ''क्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता, किन्तु अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पदार्थ का अवलम्ब ले जो ज्ञान क्रमशः जानता।
वह सर्वगत अर नित्य क्षायिक कभी हो सकता नहीं।। ५० ।।
सर्वज्ञ जिन के ज्ञान का माहात्म्य तीनों काल के।
जाने सदा सब अर्थ युगपद् विषम विविध प्रकार के।। ५१ ।।

ॐ ह्रीं क्रमिकज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभाव एवं युगपत्ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२।।

अब, ज्ञानाधिकार की इस अन्तिम गाथा में उपसंहार करते हुए कहते हैं कि केवलज्ञानी के ज्ञप्तिक्रिया के सद्भाव होने पर भी उन्हें क्रिया से होनेवाला बन्ध नहीं होता –

(हरिगीत)

सवार्थ जाने जीव पर उनरूप न परिणमित हो।
बस इसलिए है अबंधक ना ग्रहे ना उत्पन्न हो।। ५२ ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानिनः अबंधप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४३।।

अब, ज्ञानाधिकार के अंत में आचार्य अमृतचन्द्रदेव तत्त्वप्रदीपिका टीका में एक महत्त्वपूर्ण काव्य लिखते हैं जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(मनहरण कवित्त)

जिसने किये हैं निर्मूल घातिकर्म सब।
अनंत सुख वीर्य दर्श ज्ञान धारी आतमा।।
भूत भावी वर्तमान पर्याय युक्त सब।
द्रव्य जाने एक ही समय में शुद्धातमा।।
मोह का अभाव पररूप परिणमें नहीं।
सभी ज्ञेय पीके बैठा ज्ञानमूर्ति आतमा।।
पृथक्-पृथक् सब जानते हुए भी ये।
सदा मुक्त रहें अरहंत परमातमा।। ४ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्स्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४।।

।। सुखाधिकार ।।

(दोहा)

इन्द्रिय सुख तो सुख नहीं भाषी श्री भगवान।
अरे अतीन्द्रिय सुक्ख ही सचमुच सुख की खान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, **सुखाधिकार** की प्रथम गाथा में ज्ञान से अभिन्न सुख का स्वरूप बताते हुये ज्ञान तथा सुख के भेद एवं उनकी हेयोपादेयता बताते हैं –

(हरिगीत)

मूर्त और अमूर्त इन्द्रिय अर अतीन्द्रिय ज्ञान-सुख।
इनमें अमूर्त अतीन्द्रियी ही ज्ञान-सुख उपादेय हैं।। ५३ ।।

ॐ ह्रीं अतीन्द्रियज्ञानसुखयोः उपादेयत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४५।।

अब, अतीन्द्रियसुख के साधनभूत अतीन्द्रियज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये उसकी प्रशंसा करते हैं –

(हरिगीत)

अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को।
स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है।। ५४।।

ॐ ह्रीं अतीन्द्रियसुखसाधनभूतातीन्द्रियज्ञानप्रत्यक्षत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६।।

अब, दो गाथाओं में ''इन्द्रिय सुख का साधनभूत इन्द्रियज्ञान हेय है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मूर्ततनगत अमूर्त जिय मूर्तार्थ जाने मूर्त से।
अवग्रहादिकपूर्वक अर कभी जाने भी नहीं।। ५५।।

पौद्गलिक स्पर्श रस गंध वर्ण अर शब्दादि को।
भी इन्द्रियाँ इक साथ देखो ग्रहण कर सकती नहीं।। ५६।।

ॐ ह्रीं इन्द्रियसुखसाधनभूतेन्द्रियज्ञानस्य हेयत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७।।

अब, इन गाथाओं में परोक्षज्ञान और प्रत्यक्षज्ञान का स्वरूप स्पष्ट कर रहे हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियाँ परद्रव्य उनको आत्मस्वभाव नहीं कहा।
अर जो उन्हीं से ज्ञात वह प्रत्यक्ष कैसे हो सके?।। ५७ ।।

जो दूसरों से ज्ञात हो बस वह परोक्ष कहा गया।
केवल स्वयं से ज्ञात जो वह ज्ञान ही प्रत्यक्ष है।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं परोक्ष-प्रत्यक्षज्ञानस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४८।।

अब, परमार्थ सुख की प्राप्ति तो प्रत्यक्षज्ञान वाले को ही होती हैं यह बताते हैं –

(हरिगीत)

स्वयं से सर्वांग से सर्वार्थग्राही मलरहित।
अवग्रहादि विरहित ज्ञान ही सुख कहा जिनवरदेव ने।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्यक्षज्ञानस्यैव परमार्थसुखत्वसाधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४९।।

अब, 'केवलज्ञान एकान्तिक सुख नहीं है' – इस मान्यता का खण्डन करते हैं –

(हरिगीत)

अरे केवलज्ञान सुख परिणाममय जिनवर कहा।
क्षय हो गये हैं घातिया रे खेद भी उसके नहीं।। ६० ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानस्य ऐकान्तिकसुखत्वसाधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५०।।

अब, दो गाथाओं में ''केवलज्ञान अतीन्द्रियसुख स्वरूप हैं'' इस बात का उपसंहार करते हुये उसकी श्रद्धा करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है।
हैं नष्ट सर्व अनिष्ट एवं इष्ट सब उपलब्ध हैं।। ६१ ।।

घातियों से रहित सुख ही परमसुख यह श्रवण कर।
भी न करें श्रद्धा अभवि भवि भाव से श्रद्धा करें।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानस्यैव अतीन्द्रियसुखत्वश्रद्धापक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५१।।

अब, दो गाथाओं में इन्द्रियज्ञानवालों के जो इन्द्रियसुख होता है, वह दुख ही है – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

नरपती सुरपति असुरपति इन्द्रियविषयदवदाह से।
पीड़ित रहें सह सके ना रमणीक विषयों में रमें।। ६३ ।।
जो विषयसुख में लीन हैं वे हैं स्वभाविक दु:खीजन।
दु:ख के बिना विषविषय में व्यापार हो सकता नहीं।। ६४ ।।

ॐ ह्रीं इन्द्रियसुखस्य दु:खत्वसाधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५२।।

अब, इन दो गाथाओं में शरीर सुख का कारण नहीं है, यह दृढ़तापूर्वक बताते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रिय विषय को प्राप्त कर यह जीव स्वयं स्वभाव से।
सुखरूप हो पर देह तो सुखरूप होती ही नहीं।। ६५ ।।
स्वर्ग में भी नियम से यह देह देही जीव को।
सुख नहीं दे यह जीव ही बस स्वयं सुख-दुखरूप हो।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं शरीरस्य सुखसाधनत्वनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४९।।

अब, आत्मा स्वयं सुखस्वरूप हैं; अतः उसे पंचेन्द्रियों के विषय अकिंचित्कर हैं, यह दृष्टान्तपूर्वक दो गाथाओं में स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

तिमिरहर हो दृष्टि जिसकी उसे दीपक क्या करे।
जब जिय स्वयं सुखरूप हो इन्द्रिय विषय तब क्या करें।। ६७ ।।
जिसतरह आकाश में रवि उष्ण तेजरु देव है।
बस उसतरह ही सिद्धगण सब ज्ञान सुख अर देव हैं।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः सुखस्वरूपत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५४।।

।। शुभपरिणामाधिकार ।।

(दोहा)

शुभ परिणामों से मिले केवल इन्द्रिय सुक्ख।
किन्तु वह सुख सुख नहीं वह है केवल दुक्ख।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, **शुभपरिणामाधिकार** की प्रथम दो गाथाओं में इन्द्रियसुख के अकिंचित्करत्व पंचेन्द्रियविषय साधनरूप शुभपरिणाम का स्वरूप और फल दिखाते हैं –

(हरिगीत)

देव–गुरु–यति अर्चना अर दान उपवासादि में।
अर शील में जो लीन शुभ उपयोगमय वह आतमा।। ६९ ।।
अरे शुभ उपयोग से जो युक्त वह तिर्यग्गति।
अर देव मानुष गति में रह प्राप्त करता विषयसुख।। ७० ।।

ॐ ह्रीं शुभपरिणामस्य स्वरूपफलप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५५।।

अब, ''शुभोपयोग के फल में प्राप्त होनेवाली देवगति में भी स्वाभाविक सुख नहीं है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

उपदेश से है सिद्ध देवों के नहीं है स्वभावसुख।
तनवेदना से दुखी वे रमणीक विषयों में रमे।। ७१ ।।

ॐ ह्रीं देवगत्यामपि स्वाभाविकसुखरहितत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५६।।

अब, पुण्य–पाप के कारणरूप शुभ और अशुभभावों के एकत्वपने को बताते हैं –

(हरिगीत)

नर नारकी तिर्यंच सुर यदि देहसंभव दुःख को।
अनुभव करें तो फिर कहो उपयोग कैसे शुभ–अशुभ? ।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभभावयोरेकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५७।।

अब यह समझाते हैं कि शुभभावजन्य पुण्य की भी सत्ता है; तथापि वे पुण्यवानों को विषय तृष्णा ही उत्पन्न करते हैं –

(हरिगीत)

वज्रधर अर चक्रधर सब पुण्यफल को भोगते।
देहादि की वृद्धि करें पर सुखी हों ऐसे लगे।। ७३ ।।
शुभभाव से उत्पन्न विध-विध पुण्य यदि विद्यमान हैं।
तो वे सभी सुरलोक में विषयेषणा पैदा करें।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं पुण्यस्य विषयतृष्णोत्पादकत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५८।।

अब, ''पुण्य में तृष्णारूपी बीज दुःखरूप वृक्ष की वृद्धि को प्राप्त होता है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अरे जिनकी उदित तृष्णा दुःख से संतप्त वे।
हैं दुखी फिर भी आमरण वे विषयसुख ही चाहते।। ७५ ।।

ॐ ह्रीं तृष्णाबीजरूपपुण्यस्य दुःखोत्पादकत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५९।।

अब ''इन्द्रिय सुख सुख नहीं, वस्तुतः दुःख ही हैं'' यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है।। ७६ ।।

ॐ ह्रीं इन्द्रियसुखस्य दुखत्वसाधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६०।।

अब ''पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है'' इस बात को स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है ह्न जो न माने बात ये।
संसार-सागर में भ्रमें मद-मोह से आच्छन्न वे।। ७७ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापयोरेकत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६१।।

अब इस गाथा में यह बता रहे हैं कि ज्ञानिजन शुद्धोपयोग से देहोत्पन्न दुःखों का क्षय करते हैं –

(हरिगीत)

विदितार्थजन परद्रव्य में जो राग-द्वेष नहीं करें।
शुद्धोपयोगी जीव वे तनजनित दु:ख का क्षय करें।। ७८ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः दुःखनाशकशुद्धोपयोगप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६२।।

अब आचार्य कहते हैं कि मैं इस शुद्धोपयोग के द्वारा मोह को जडमूल से फेंकने के लिये कमर कसके तैयार हूँ।

(हरिगीत)

सब छोड़ पापारंभ शुभचारित्र में उद्यत रहें।
पर नहीं छोड़े मोह तो शुद्धातमा को ना लहें।। ७९ ।।

ॐ ह्रीं शुभचारित्रसद्भावेऽपि मोहनाशाभावे शुद्धात्मानुपलंभप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६३।।

अब मोह की सेना को जीतने का उपाय बताया जा रहा है -

(हरिगीत)

द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो।। ८० ।।

ॐ ह्रीं मोहसेनाविजयाय उपायनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६४।।

अब, चारित्रमोह के नाश की बात करते हैं -

(हरिगीत)

जो जीव व्यपगत मोह हो निज आत्म उपलब्धि करें।
वे छोड़ दें यदि राग-रुष शुद्धात्म उपलब्धि करें।। ८१ ।।

ॐ ह्रीं चारित्रमोहविजयाय उपायनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६५।।

अब, कहते हैं कि – 'सभी अरहन्तों के द्वारा अपनाया हुआ व उपदेश दिया हुआ एक यही मार्ग है' –

(हरिगीत)

सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं श्री तथाविध-क्षपितकर्मांश-अर्हद्भ्यो नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६६।।

अब, मोह-राग-द्वेष का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्हें जड़मूल से उखाड़ फैंकने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

द्रव्यादि में जो मूढ़ता वह मोह उसके जोर से।
कर राग-रुष परद्रव्य में जिय क्षुब्ध हो चहुं ओर से।। ८३ ।।
बंध होता विविध मोहरु क्षोभ परिणत जीव के।
बस इसलिए सम्पूर्णत: वे नाश करने योग्य हैं।। ८४ ।।

ॐ ह्रीं बंधकारणरूप मोह-राग-द्वेषनाशप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६७।।

अब, मोह का त्याग करने के लिये मोह के चिन्ह बताते हैं –

(हरिगीत)

अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति।
और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं मोहचिन्हप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६८।।

अब, दर्शनमोह के नाश के लिये स्वाध्याय की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से।
दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए।। ८६ ।।

ॐ ह्रीं दृगमोहक्षयनिमित्त-स्वाध्यायप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६९।।

अब, द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक वस्तु का स्वरूप बता रहे हैं -

(हरिगीत)

द्रव्य-गुण-पर्याय ही हैं अर्थ सब जिनवर कहें।
जिय द्रव्य गुण-पर्यायमय ही भिन्न वस्तु है नहीं।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-गुण-पर्यायात्मकवस्तुस्वरूपप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७०।।

अब, 'जिनेश्वरदेव के उपदेशानुसार पुरुषार्थ से मोह को नाश करनेवाला जीव अल्पकाल में ही सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। यह बताते हैं -

(हरिगीत)

जिनदेव का उपदेश यह जो हने मोहरु क्षोभ को।
वह बहुत थोड़े काल में ही सब दुखों से मुक्त हो।। ८८ ।।
जो जानता ज्ञानात्मक निजरूप अर परद्रव्य को।
वह नियम से ही क्षय करे दृगमोह एवं क्षोभ को।। ८९ ।।

ॐ ह्रीं जिनेश्वरोपदेशानुसार-मोहनाशक-साधकजीव प्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७१।।

अब, प्रेरणा देते हुये आचार्य कहते हैं कि यदि अपनी निर्मोहता चाहते हो तो आगम के अभ्यास से स्व-पर भेदविज्ञान करो?

(हरिगीत)

निर्मोह होना चाहते तो गुणों की पहिचान से।
तुम भेद जानो स्व-पर में जिनमार्ग के आधार से।। ९० ।।

ॐ ह्रीं आगमाभ्यासेन स्वपरभेदविज्ञानप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७२।।

अब, 'जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित पदार्थों के श्रद्धान बिना धर्म की प्राप्ति नहीं होती' - यह कहते हैं -

(हरिगीत)

द्रव्य जो सविशेष सत्तामयी उसकी दृष्टि ना।
तो श्रमण हो पर उस श्रमण से धर्म का उद्भव नहीं।। ९१ ।।

ॐ ह्रीं जिनोदितार्थश्रद्धानमन्तरेण धर्मलाभाभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७३।।

अब, ''धर्मपरिणत संत ही धर्म है'' ऐसा बताते हैं –

(हरिगीत)

आगमकुशल दृगमोहहत आरूढ़ हों चारित्र में।
बस उन महात्मन श्रमण को ही धर्म कहते शास्त्र में।। ९२ ।।

ॐ ह्रीं धर्मपरिणतश्रमणप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७४।।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञानतत्त्व अधिकार की, पूजन अमल अनूप।
अब जयमाला में कहें, ज्ञानतत्त्व का रूप।। १ ।।

ज्ञानतत्त्व महाधिकार में, कहे चार अधिकार।
पहला शुद्धोपयोग है, दूजा ज्ञान अधिकार।। २ ।।

तीजा सुख अधिकार है, चौथा शुभ अधिकार।
इन सबको संक्षेप में, जानो भले प्रकार।। ३ ।।

(पद्धरी)

है शुद्धातम के ध्यानरूप।
शुद्धोपयोग अद्‌भुत अनूप।।
ताको फल प्रगटे अनन्त ज्ञान।
एवं अतीन्द्रिय सुख महान।। ४ ।।

निज के पर के जितने विशेष।
सब जानत हैं सर्वज्ञ देव।।
परमात्म अतीन्द्रिय ज्ञानरूप।
है परम अतीन्द्रिय सुखस्वरूप।। ५ ।।

जब जिसका जैसा जो होना।
या हुआ सभी कुछ जाने जो।।
पर हस्तक्षेप कुछ भी न करें।
सर्वज्ञदेव कहलाते वो।। ६ ।।

जब जाने आगे का सबकुछ।
तब समझो सबकुछ नक्की है।।
इसमें आशंका रंच नहीं।
यह बात एकदम पक्की है।। ७ ।।

कुछ करना धरना शेष नहीं।
अपने में अपनापन लाओ।।
अपने को ही अपना जानो।
अपने में पूर्ण समा जावो।। ८ ।।

यह समता ही सामायिक है।
यह समता ही है आत्मध्यान।।
यह समता ही समाधि साधन।
यह समता ही है परमध्यान।। ९ ।।

यह समता है आनन्द रूप।
यह है अतीन्द्रिय सुख स्वरूप।।
यह पाना है अपनाना है।
है यही वास्तविक मम स्वरूप।। १० ।।

शुभभावों से जो सुख होता।
वह तो दुख का ही है प्रकार।।
उसमें सुख का आभास नहीं।
वह तो दुख ही है बस अपार।। ११ ।।

जब सांसारिक सुख-दुख दुख है।
जब उनमें अन्तर नहीं रंच।।
उनके कारण जो पुण्य-पाप।
उनमें भी अन्तर नहीं रंच।। १२ ।।

जब पुण्य-पाप दोनों सम हैं।
दोनों ही हेय एक से हैं।।
यह जाना पर छोड़ा न मोह।
तो शुद्ध आतमा प्राप्त न हो।। १३ ।।

यदि मोह छोड़ना है भाई!
अरहंत जिनेश्वर को जानो।।
द्रव से गुण से पर्यायों से।
तो मोह नाश होगा भाई।। १४ ।।

इनको जानो जिनशास्त्रों का।
तन से मन से अध्ययन करके।।
चिन्तन करके मंथन करके।
सब विधि से आलोड़न करके।। १५ ।।

मर के पच के जैसे भी हो।
यह काम इसी भव में करना।।
हो एक लक्ष्य अर एक ध्यान।
बाकी सब तो जीना-मरना।। १६ ।।

इन बातों का विस्तार कथन।
है ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन में।।
युक्ति आगम से समझाया।
है ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन में।। १७ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन-महाधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ ज्ञानतत्त्व अधिकार।
आराधन से प्रगट हो ज्ञानानन्द अपार।।१८ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

३

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

ज्ञेयतत्त्व सारा जगत, वरणा द्विविध प्रकार।
सत्स्वरूप सामान्य सब, दूजा विविध प्रकार।। १।।
गुण–पर्यय उत्पाद–व्यय–ध्रुवमय अनुपम भाव।
सब द्रव्यों का एक सा, सत् सामान्य स्वभाव।। २।।
अपना–अपना भाव है, अपना–अपना रूप।
इसप्रकार इस लोक में, सबका पृथक् स्वरूप।। ३।।
ज्ञानरूप निज आतमा, ज्ञेयरूप जग जान।
ज्ञान ज्ञेय के बीच में, करो भेदविज्ञान।। ४।।
यह सब बतलाया गया, ज्ञेयतत्त्व के माँहि।
इसे जान भवि भव तरो, दूजा मग कोइ नाँहि।। ५।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकार!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकार!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(मानव)

जल

यद्यपि जल शीतल निर्मल ठंडक पहुँचाने वाला।
पर नहीं बुझा सकता है जग की यह भीषण ज्वाला।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

पल–पल में वर्त रहा है निज आतम में अपनापन।
अन्तर में महक रहा है मानो मलयागिरि चन्दन।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। २।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अक्षत अखण्ड निज आतम सुखमय चेतन चिन्मय है।
अपने में समा गया है अपने में ही तन्मय है।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ३।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

मनमोहक माने जाते मुनिमन–सम अमल सुमन ये।
करके विरक्त विषयों से मन को निर्मल ना करते।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ४।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

रुचिकर नैवेद्य मनोहर निशदिन मन भर के खाये।
क्षुत्पीड़ा शान्त हुई ना तेरे चरणों में आये।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ५।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

ज्यों स्वपरप्रकाशक दीपक स्व को पर को परकाशे।
त्यों स्वपरप्रकाशक आतम स्व को पर को परकाशे।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यद्यपि यह धूप सुगंधित पर आतम गंध रहित है।
इसके सेवन से प्रभुवर रे! रंच न आतम हित है।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

ये सरस मधुर मनमोहक पर इनसे सफल न जीवन।
जीवन तो वही सफल है आतम अनुभवमय जीवन।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अद्‌भुत अनर्घ्य पद पाने में अर्घ्य नहीं उपयोगी।
यह अर्घ्य समर्पण करके पाऊँ शिवपद उपयोगी।।
यह ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अद्‌भुत है गजब निराला।
जग में भटके जग–जन को शिवमग दरशानेवाला।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार ।।

(सोरठा)

सभी द्रव्य हैं ज्ञेय, आतम ज्ञायक-ज्ञेय है।
निज आतम श्रद्धेय, निज आतम ही ध्येय है।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

।। द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन अधिकार ।।

इस अधिकार के आरम्भ में पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्यायरूप होता है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही है परसमय।। ९३ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यगुणपर्यायरूप-पदार्थनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७५ ।।

अब स्वसमय और परसमय के स्वरूप को विशेष स्पष्ट करते हैं -

(हरिगीत)

पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
थित जीव ही हैं स्वसमय-यह कहा जिनवरदेव ने।। ९४ ।।

ॐ ह्रीं स्व-परसमयप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७६।।

अब द्रव्य का लक्षण बताते हैं -

(हरिगीत)

निजभाव को छोड़े बिना उत्पादव्ययध्रुवयुक्त गुण-
पर्ययसहित जो वस्तु है वह द्रव्य है जिनवर कहें।। ९५ ।।

ॐ ह्रीं उत्पादव्ययध्रौव्य-गुणपर्यायसहितद्रव्यपरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७७।।

अस्तित्व दो प्रकार का होता है, अब इस गाथा में स्वरूपास्तित्व का स्वरूप स्पष्ट करते हैं -

(हरिगीत)

गुण-चित्रमयपर्याय से उत्पादव्ययध्रुवभाव से।
जो द्रव्य का अस्तित्व है वह एकमात्र स्वभाव है।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं स्वरूपास्तित्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७८।।

अब सादृश्यास्तित्व का स्वरूप स्पष्ट करते हैं -

(हरिगीत)

रे सर्वगत सत् एक लक्षण विविध द्रव्यों का कहा।
जिनधर्म का उपदेश देते हुए जिनवरदेव ने।। ९७ ।।

ॐ ह्रीं सादृश्यास्तित्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।७९।।

''प्रत्येक द्रव्य स्वतः सिद्ध और सत् स्वभाव से ही हैं'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

स्वभाव से ही सिद्ध सत् जिन कहा आगमसिद्ध है।
यह नहीं माने जीव जो वे परसमय पहिचानिये।। ९८ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य स्वाभाविकसिद्धत्व एवं सत्प्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८०।।

अब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमन द्रव्य का स्वभाव है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

स्वभाव में थित द्रव्य सत् सत् द्रव्य का परिणाम जो।
उत्पादव्ययध्रुवसहित है वह ही पदार्थस्वभाव है।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपरिणमनस्वभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८१।।

अब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में अविनाभाव है अर्थात् ये तीनों एक साथ रहते हैं, एक के बिना दूसरा नहीं होता यह बताते हैं -

(हरिगीत)

भंगबिन उत्पाद ना उत्पाद बिन ना भंग हो।
उत्पाद-व्यय हो नहीं सकते एक ध्रौव्य पदार्थ बिन।। १०० ।।

ॐ ह्रीं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-अविनाभावत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८२।।

अब ''उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य - तीनों एक द्रव्य ही हैं'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

पर्याय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव द्रव्य में पर्यायें हैं।
बस इसलिए तो कहा है कि वे सभी इक द्रव्य हैं।। १०१ ।।

ॐ ह्रीं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एव द्रव्यत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।। ८३।।

अब ''उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक ही समय में हैं; इनमें कालभेद नहीं'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

उत्पाद-व्यय-थिति द्रव्य में समवेत हों प्रत्येक पल।
बस इसलिए तो कहा है इन तीनमय हैं द्रव्य सब।। १०२ ।।

ॐ ह्रीं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसमकालत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।। ८४।।

अब अनेक द्रव्यपर्यायों द्वारा द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताते हैं -

(हरिगीत)

उत्पन्न होती अन्य एवं नष्ट होती अन्य ही।
पर्याय किन्तु द्रव्य ना उत्पन्न हो ना नष्ट हो।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं अनेकद्रव्यपर्यायैः द्रव्यस्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८५।।

अब गुणपर्यायों द्वारा द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताते हैं -

(हरिगीत)

गुण से गुणान्तर परिणमें द्रव स्वयं सत्ता अपेक्षा।
इसलिए गुणपर्याय ही हैं द्रव्य जिनवर ने कहा।। १०४ ।।

ॐ ह्रीं गुणपर्यायैः उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ...।। ८६।।

अब ''द्रव्य और सत्ता एक ही है'' - यह बताते हैं -

(हरिगीत)

यदि द्रव्य न हो स्वयं सत् तो असत् होगा नियम से।
किम होय सत्ता से पृथक् जब द्रव्य सत्ता है स्वयं।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यसत्वयो : एकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।। ८७।।

अब पृथक्त्व और अन्यत्व का लक्षण बताते हैं –

(हरिगीत)

जिनवीर के उपदेश में पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता।
अतद्भाव ही अन्यत्व है तो अतत् कैसे एक हों।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं पृथक्त्व-अन्यत्वयो: लक्षणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८८।।

अब सत् का विस्तार से अतद्भाव का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

सत् द्रव्य सत् गुण और सत् पर्याय सत् विस्तार है।
तद्रूपता का अभाव ही तद्-अभाव अर अतद्भाव है।। १०७ ।।

ॐ ह्रीं अतद्भावस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ८९।।

अब ''सर्वथा अभाव का नाम अतद्भाव नहीं है'' – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

द्रव्य वह गुण नहीं अर गुण द्रव्य ना अतद्भाव यह।
सर्वथा जो अभाव है वह नहीं अतद्भाव है।। १०८ ।।

ॐ ह्रीं सर्वथाऽभावस्य अतद्भावनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९०।।

अब सत्ता और द्रव्य में गुण-गुणी का संबंध बताते हैं –

(हरिगीत)

परिणाम द्रव्य स्वभाव जो वह अपृथक् सत्ता से सदा।
स्वभाव में थित द्रव्य सत् जिनदेव का उपदेश यह।। १०९ ।।

ॐ ह्रीं सत्ता-द्रव्ययोः गुण-गुणीसंबंधप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९१।।

अब ''गुण और गुणी दोनों एक ही हैं'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पर्याय या गुण द्रव्य के बिन कभी भी होते नहीं।
द्रव्य ही है भाव इससे द्रव्य सत्ता है स्वयं।। ११० ।।

ॐ ह्रीं गुण-गुणीनोः एकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९२।।

अब ''द्रव्य के सत्-उत्पाद और असत्-उत्पाद में कोई विरोध नहीं हैं'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

पूर्वोक्त द्रव्यस्वभाव में उत्पाद सत् नयद्रव्य से।
पर्यायनय से असत् का उत्पाद होता है सदा।। १११ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य सदुत्पाद-असदुत्पादयोः अविरोधप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामाति स्वाहा।।९३।।

अब ''सत् उत्पाद को अनन्यत्व के द्वारा तथा असत् को अन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं -

(हरिगीत)

परिणमित जिय नर देव हो या अन्य हो पर कभी भी।
द्रव्यत्व को छोड़े नहीं तो अन्य होवे किसतरह।। ११२ ।।
मनुज देव नहीं है अथवा देव मनुजादिक नहीं।
ऐसी अवस्था में कहो कि अनन्य होवे किसतरह।। ११३ ।।

ॐ ह्रीं सदुत्पादस्य अनन्यत्व-असदुत्पादस्य अन्यत्वं इति प्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ९४।।

अब ''एक ही द्रव्य में अन्यपना और अनन्यपना होने से जो विरोध मालूम पड़ता है, उसका निराकरण करते हैं -

(हरिगीत)

द्रव्य से है अनन्य जिय पर्याय से अन-अन्य है।
पर्याय तन्मय द्रव्य से तत्समय अतः अनन्य है।। ११४ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यस्य अन्यत्व-अनन्यत्वविरोधनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९५।।

अब समस्त विरोध को समाप्त करनेवाली सप्तभंगी की चर्चा करते हैं -

(हरिगीत)

अपेक्षा से द्रव्य 'है' 'है नहीं' 'अनिर्वचनीय' है।
'है है नहीं' इसतरह ही अवशेष तीनों भंग हैं।। ११५ ।।

ॐ ह्रीं सप्तभङ्गीस्वरूपप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९६।।

अब मनुष्यादि पर्यायरूप विविध दशायें रागादिभावों का फल है – यह दर्शाते हैं – (हरिगीत)

पर्याय शाश्वत नहीं परन्तु है विभावस्वभाव तो।
है अफल परमधरम परन्तु क्रिया अफल नहीं कही।। ११६ ।।

ॐ ह्रीं रागादिविभावानांसफलत्व प्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।९७।।

अब नाम नामक कर्म ही जीव के स्वभाव का पराभव करके मनुष्यादि पर्यायों को करता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

नाम नामक कर्म जिय का पराभव कर जीव को।
नर नारकी तिर्यंच सुर पर्याय में दाखिल करे।। ११७ ।।

ॐ ह्रीं नामकर्मणः जीवस्वभावं पराभूय मनुष्यादिपर्यायकारणप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ९८।।

अब इस गाथा में यह स्पष्ट कर रहे हैं कि मनुष्यादि पर्यायों में जीव के स्वभाव का पराभव कैसे होता है?

(हरिगीत)

नाम नामक कर्म से पशु नरक सुर नर गती में।
स्वकर्म परिणत जीव को निजभाव उपलब्धि नहीं।। ११८ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्वभावस्य पराभवत्वप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।। ९९।।

अब जीवद्रव्य द्रव्यरूप से अवस्थित होने पर भी पर्यायरूप से अनवस्थित है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

उत्पाद–व्यय ना प्रतिक्षण उत्पाद–व्ययमय लोक में।
अन–अन्य हैं उत्पाद–व्यय अर अभेद से हैं एक भी।। ११९ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य द्रव्य-पर्यायरूपेण अवस्थितानवस्थितत्वप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१००।।

अब ''जीवद्रव्य के अनवस्थित होने का हेतु'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

स्वभाव से ही अवस्थित संसार में कोई नहीं।
संसरण करते जीव की यह क्रिया ही संसार है।। १२० ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य अनवस्थितकारणसंसारस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०१।।

अब परिणमनशील संसार में आत्मा से देह के संबंध का क्या कारण हैं? यह बताते हैं – (हरिगीत)

कर्ममल से मलिन जिय पा कर्मयुत परिणाम को।
कर्मबंधन में पड़े परिणाम ही बस कर्म हैं।। १२१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मदेहसम्बन्धे कारणकर्मप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः....।।१०२।।

अब ''आत्मा कथंचित् भावकर्म का कर्त्ता तो है; पर द्रव्यकर्म का कर्त्ता कदापि नहीं'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

परिणाम आत्मा और वह ही कही जीवमयी क्रिया।
वह क्रिया ही है कर्म जिय द्रवकर्म का कर्ता नहीं।। १२२ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य भावकर्मकर्तृत्व-द्रव्यकर्माकर्तृत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०३।।

अब आत्मा ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतनारूप परिणमित होता है – यह बताते हैं – (हरिगीत)

करम एवं करमफल अर ज्ञानमय यह चेतना।
ये तीन इनके रूप में ही परिणमे यह आतमा।। १२३ ।।
ज्ञान अर्थविकल्प जो जिय करे वह ही कर्म है।
अनेकविध वह कर्म है अर करमफल सुख-दुक्ख हैं।। १२४ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः त्रिविधचेतनाप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः .....।।१०४।।

अब ''ये तीनों चेतनायें प्रकारान्तर से एक आत्मा ही है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

आत्मा परिणाममय परिणाम तीन प्रकार हैं।
ज्ञान कर्मरु कर्मफल परिणाम ही हैं आत्मा।। १२५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः त्रिविधचेतना-अभिन्नत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः....।।१०५।।

अब ''आत्मा के ज्ञेयतत्त्व के निश्चय से ज्ञानतत्त्व की सिद्धि होने पर शुद्ध आत्मा की उपलब्धि होती है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमण निश्चय करे कर्ता करम कर्मरु कर्मफल।
ही जीव ना पररूप हो शुद्धात्म उपलब्धि करे।। १२६ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मोपलब्धिउपायप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः .....।।१०६।।

अब उपसंहार के रूप में आचार्य अमृतचन्द्र दो कलश लिखते हैं –

(मनहरण कवित्त)

जिसने बताई भिन्नता भिन्न द्रव्यनि से।
और आतमा एक ओर को हटा दिया।।
जिसने विशेष किये लीन सामान्य में।
और मोहलक्ष्मी को लूट कर भगा दिया।।
ऐसे शुद्धनय ने उत्कट विवेक से ही।
निज आतमा का स्वभाव समझा दिया।।
और सम्पूर्ण इस जग से विरक्त कर।
इस आत्म को निजातम में लगा दिया।। ७ ।।
इस भाँति परपरिणति का उच्छेद कर।
करता–करम आदि भेदों को मिटा दिया।।
इस भाँति आतमा का तत्त्व उपलब्ध कर।
कल्पनाजन्य भेदभाव को मिटा दिया।।
ऐसा यह आतमा चिन्मात्र निरमल।
सुखमय शान्तिमय तेज अपना लिया।।
अपनी ही महिमामय परकाशमान।
रहेगा अनंतकाल जैसा सुख पा लिया।। ८ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयविषयभूत शुद्धात्मप्रशंसक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०७।।

।। द्रव्यविशेषप्रज्ञापन अधिकार ।।

(दोहा)

महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का सार।
प्रस्तुत द्रव्यविशेष का प्रज्ञापन अधिकार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब उक्त दोनों अधिकारों की संधि को स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र एक छन्द लिखते हैं –

(दोहा)

अरे द्रव्य सामान्य का अबतक किया बखान।
अब तो द्रव्यविशेष का करते हैं व्याख्यान।। ९ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यविशेषव्याख्यानप्रतिज्ञाप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०८।।

अब ''जीव और अजीव द्रव्य के भेद से द्रव्य दो प्रकार के होते हैं'' – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

द्रव्य जीव अजीव हैं जिय चेतना उपयोगमय।
पुद्गलादी अचेतन हैं अत:एव अजीव हैं।। १२७ ।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवद्विविधद्रव्यप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः .....।।१०९।।

अब द्रव्यों का विभाजन आकाशद्रव्य की मुख्यता से लोक–अलोक के रूप में करते हैं –

(हरिगीत)

आकाश में जो भाग पुद्गल जीव धर्म अधर्म से।
अर काल से समृद्ध वह सब लोक शेष अलोक है।। १२८ ।।

ॐ ह्रीं लोक–अलोकद्विविधद्रव्यप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।११०।।

अब द्रव्यों का विभाजन 'क्रियावान और भाववान' के रूप में करते हैं–

(हरिगीत)

जीव अर पुद्गलमयी इस लोक में परिणमन से।
भेद से संघात से उत्पाद–व्यय–ध्रुवभाव हों।। १२९ ।।

ॐ ह्रीं क्रियावान–भाववानद्विविधद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१११।।

अब द्रव्यों का विभाजन मूर्त और अमूर्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं–

(हरिगीत)

जिन चिह्नों से द्रव ज्ञात हों रे जीव और अजीव में।
वे मूर्त और अमूर्त गुण हैं अतद्भावी द्रव्य से।। १३० ।।

इन्द्रियों से ग्राह्य बहुविधि मूर्त्त गुण पुद्गलमयी।
अमूर्त्त हैं जो द्रव्य उनके गुण अमूर्त्तिक जानना।। १३१ ।।

ॐ ह्रीं मूर्त–अमूर्तद्विविधद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११२।।

अब मूर्तपुद्गलद्रव्य के गुणों को बताते हैं–

(हरिगीत)

सूक्ष्म से पृथ्वी तलक सब पुद्गलों में जो रहें।
स्पर्श रस गंध वर्ण गुण अर शब्द सब पर्याय हैं।। १३२ ।।

ॐ ह्रीं मूर्तपुद्गलद्रव्यगुणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११३।।

अब शेष अमूर्त द्रव्यों के गुणों की चर्चा करते हैं–

(हरिगीत)

आकाश का अवगाह धर्माधर्म के गमनागमन।
स्थानकारणता कहे ये सभी जिनवरदेव ने।। १३३ ।।

उपयोग आतमराम का अर वर्तना गुण काल का।
है अमूर्त द्रव्यों के गुणों का कथन यह संक्षेप में।। १३४ ।।

ॐ ह्रीं अमूर्तद्रव्यगुणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११४।।

अब द्रव्यों का विभाजन अस्तिकाय और नास्तिकाय के रूप में करते हैं–

(हरिगीत)

हैं बहुप्रदेशी जीव पुद्गल गगन धर्माधर्म सब।
है अप्रदेशी काल जिनवरदेव के हैं ये वचन।। १३५ ।।

ॐ ह्रीं अस्तिकाय-नास्तिकायद्विविधद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११५।।

अब कौनसा द्रव्य कहाँ रहता है – यह बताते हैं–

(हरिगीत)

गगन लोकालोक में अर लोक धर्माधर्म से।
है व्याप्त अर अवशेष दो से काल पुद्गलजीव हैं।। १३६ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्याणां क्षेत्रप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११६।।

अब द्रव्यों के सप्रदेशीपना और अप्रदेशीपना किसप्रकार संभव है और कालाणु अप्रदेशी हैं – यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जिसतरह परमाणु से है नाप गगन प्रदेश का।
बस उसतरह ही शेष का परमाणु रहित प्रदेश से।। १३७ ।।
पुद्गलाणु मंदगति से चले जितने काल में।
रे एक गगनप्रदेश पर परदेश विरहित काल वह।। १३८ ।।

ॐ ह्रीं सप्रदेशी-अप्रदेशीद्विविधद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११७।।

अब कालद्रव्य के द्रव्य और पर्यायों को स्पष्ट करते हैं–

(हरिगीत)

परमाणु गगनप्रदेश लंघन करे जितने काल में।
उत्पन्नध्वंसी समय परापर रहे वह ही काल है।। १३९ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्य द्रव्यपर्यायनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।११८।।

अब प्रदेश की परिभाषा बताते हैं–

(हरिगीत)

अणु रहे जितने गगन में वह गगन ही परदेश है।
अरे उस परदेश में ही रह सकें परमाणु सब।। १४० ।।

ॐ ह्रीं प्रदेशलक्षणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११९।।

अब तिर्यक्प्रचय और उर्ध्वप्रचय को समझाते हैं–

(हरिगीत)

एक दो या बहुत से परदेश असंख्य अनंत हैं।
काल के हैं समय अर अवशेष के परदेश हैं।। १४१ ।।

ॐ ह्रीं तिर्यक्प्रचय-उर्ध्वप्रचयस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२०।।

अब कालद्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है – यह बताते हैं–

(हरिगीत)

इक समय में उत्पाद-व्यय यदि काल द्रव में प्राप्त हैं।
तो काल द्रव्य स्वभावथित ध्रुवभावमय ही क्यों न हो।। १४२ ।।

इक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम के जो अर्थ हैं।
वे सदा हैं बस इसलिए कालाणु का सद्भाव है।। १४३ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२१।।

अब ''कालपदार्थ अप्रदेशी नहीं, एकप्रदेशी हैं'' यह बताते हैं–

(हरिगीत)

जिस अर्थ का इस लोक में ना एक भी परदेश हो।
वह शून्य ही है जगत में परदेश बिन न अर्थ हो।। १४४ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्य एकप्रदेशत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२२।।

।। ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार ।।

(दोहा)

निज ज्ञायक भगवान से भिन्न सभी परज्ञेय।
निज ज्ञायक भगवान ही एकमात्र श्रद्धेय ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार में सर्वप्रथम आत्मा को पर से अत्यन्त विभक्त करने के लिये व्यवहारजीवत्व के हेतु का विचार करते हैं –

(दोहा)

सप्रदेश पदार्थनिष्ठित लोक शाश्वत जानिये।
जो उसे जाने जीव वह चतुप्राण से संयुक्त है।। १४५ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारजीवत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।१२३।।

अब प्राणों के नाम बताकर प्राणों को जीवत्व का हेतुपना और उनका पौद्गलिकपना बताते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रिय बल अर आयु श्वासोच्छ्वास ये ही जीव के।
हैं प्राण इनसे लोक में सब जीव जीवे भव भ्रमें।। १४६ ।।
जीव जीवे जियेगा एवं अभी तक जिया है।
इन चार प्राणों से परन्तु प्राण ये पुद्गलमयी।। १४७ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य हेतुभूतप्राणानां पौद्गलिकत्वप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२४।।

अब पौद्गलिक प्राण पौद्गलिक कर्मों के बंध के हेतु हैं – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मोहादि कर्मों से बंधा यह जीव प्राणों को धरे।
अर कर्मफल को भोगता अर कर्म का बंधन करे।। १४८ ।।

मोह एवं द्वेष से जो स्व-पर को बाधा करे।
पूर्वोक्त ज्ञानावरण आदि कर्म वह बंधन करे।। १४९ ।।

ॐ ह्रीं पौद्गलिकप्राणानां पौद्गलिककर्मबंधहेतुत्वप्रकाशक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२५।।

अब पौद्गलिक प्राणों की संतति की प्रवृत्ति और निवृत्ति का अंतरंग हेतु क्या है? - यह बताते हैं -

(हरिगीत)

ममता न छोड़े देह विषयक जबतलक यह आतमा।
कर्ममल से मलिन हो पुन-पुनः प्राणों को धरे।। १५० ।।
उपयोगमय निज आतमा का ध्यान जो धारण करे।
इन्द्रियजयी वह विरतकर्मा प्राण क्यों धारण करे।। १५१ ।।

ॐ ह्रीं पौद्गलिकप्राणानां अंतरंगहेतुनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२६।।

अब देव-मनुष्यादि चार गतिरूप पर्यायों का स्वरूप एवं भेद बताते हैं -

(हरिगीत)

अस्तित्व निश्चित अर्थ की अन्य अर्थ के संयोग से।
जो अर्थ वह पर्याय जो संस्थान आदिक भेदमय।। १५२ ।।
तिर्यंच मानव देव नारक नाम नामक कर्म के।
उदय से पर्याय होवें अन्य-अन्य प्रकार की।। १५३ ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य चतुर्गतिपर्यायस्वरूपभेदप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२७।।

अब अर्थनिश्चायक स्वरूपास्तित्व को स्व-पर विभाग के हेतुरूप में समझते हैं - (हरिगीत)

त्रिधा निज अस्तित्व को जाने जो द्रव्यस्वभाव से।
वह हो न मोहित जान लो अन-अन्य द्रव्यों में कभी।। १५४ ।।

ॐ ह्रीं स्वरूपास्तित्वं स्वपरविभागहेतुप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।१२८।।

अब शरीर प्राप्ति का मूल कारण बताते हैं –

(हरिगीत)

आतमा उपयोगमय उपयोग दर्शन–ज्ञान हैं।
अर शुभ–अशुभ के भेद भी तो कहे हैं उपयोग के।। १५५ ।।
उपयोग हो शुभ पुण्यसंचय अशुभ हो तो पाप का।
शुभ–अशुभ दोनों ही न हों तो कर्म का बंधन न हो।। १५६ ।।

ॐ ह्रीं शरीरप्राप्तिमूलकारणनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२९।।

अब शुभ और अशुभ उपयोग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

श्रद्धान सिध–अणगार का अर जानना जिनदेव को।
जीवकरुणा पालना बस यही है उपयोग शुभ।। १५७ ।।
अशुभ है उपयोग वह जो रहे नित उन्मार्ग में।
श्रवण–चिंतन–संगति विपरीत विषय–कषाय में।। १५८ ।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभोपयोगस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३०।।

अब अशुद्धोपयोग के विनाश के अभ्यास की बात करते हैं –

(हरिगीत)

आतमा ज्ञानात्मक अनद्रव्य में मध्यस्थ हो।
ध्यावे सदा ना रहे वह नित शुभ–अशुभ उपयोग में।। १५९ ।।

ॐ ह्रीं अशुद्धोपयोगनिरोधक–आत्माभ्यासनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३१।।

अब शरीरादि परद्रव्यों के प्रति माध्यस्थ भाव दिखाकर मन–वचन–काय परद्रव्य हैं, यह समझाते हैं –

(दोहा)

देह मन वाणी न उनका करण या कर्ता नहीं।
ना कराऊँ मैं कभी भी अनुमोदना भी ना करूँ।। १६० ।।

देह मन वच सभी पुद्गल द्रव्यमय जिनवर कहे।
ये सभी जड़ स्कन्ध तो परमाणुओं के पिण्ड हैं।। १६१ ।।

ॐ ह्रीं शरीरादिपरद्रव्यमाध्यस्थभावनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३२।।

अब यह बताते हैं कि यह आत्मा न तो परद्रव्य हैं और न परद्रव्यों का कर्त्ता ही है –

(हरिगीत)

मैं नहीं पुद्गलमयी मैंने ना बनाया हैं इन्हें।
मैं तन नहीं हूँ इसलिए ही देह का कर्ता नहीं।। १६२ ।।

ॐ ह्रीं परद्रव्य-अकर्तृत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३३।।

अब पुद्गल में परस्पर बंधरूप परिणमन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

रे अप्रदेशी अणु एक प्रदेशमय अर अशब्द हैं।
अर रूक्षता-स्निग्धता से बहुप्रदेशीरूप हैं।। १६३ ।।
परमाणु के परिणमन से इक-एक कर बढ़ते हुए।
अनंत अविभागी न हो स्निग्ध अर रूक्षत्व से।। १६४ ।।
परमाणुओं का परिणमन सम-विषम अर स्निग्ध हो।
अर रूक्ष हो तो बंध हो दो अधिक पर न जघन्य हो।। १६५ ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलानां बंधस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३४।।

अब ''आत्मा पुद्गलपिण्डों का कर्त्ता नहीं है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

दो अंश चिकने अणु चिकने-रूक्ष हो यदि चार तो।
हो बंध अथवा तीन एवं पाँच में भी बंध हो।। १६६ ।।

यदि बहुप्रदेशी कंध सूक्षम-थूल हों संस्थान में।
तो भूजलादि रूप हों वे स्वयं के परिणमन से।। १६७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः पुद्गलपिण्ड-अकर्तृत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३५।।

अब 'आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप भी नहीं करता'-यह बताते हैं -

(हरिगीत)

भरा है यह लोक सूक्षम-थूल योग्य-अयोग्य जो।
कर्मत्व के वे पौद्गलिक उन खंध के संयोग से।। १६८ ।।
स्कन्ध जो कर्मत्व के हों योग्य वे जिय परिणति।
पाकर करम में परिणमें न परिणमावे जिय उन्हें।। १६९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३६।।

अब 'आत्मा पौद्गलिक शरीर का कर्त्ता नहीं है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

कर्मत्वगत जड़पिण्ड पुद्गल देह से देहान्तर।
को प्राप्त करके देह बनते पुन-पुनः वे जीव की।। १७० ।।

यह देह औदारिक तथा हो वैक्रियक या कार्मण।
तेजस अहारक पाँच जो वे सभी पुद्गलद्रव्यमय।। १७१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः पौद्गलिकशरीर-अकर्तृत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३७।।

अब 'आत्मा का असाधारण लक्षण बताते हैं -

(हरिगीत)

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।। १७२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः असाधारणलक्षणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः .....।।१३८।।

अब अरूपी आत्मा का रूपी पौद्गलिक कर्मों के साथ बंध कैसे हो सकता है? – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मूर्त पुद्गल बंधे नित स्पर्श गुण के योग से।
अमूर्त आतम मूर्त पुद्गल कर्म बाँधे किसतरह।। १७३ ।।
जिसतरह रूपादि विरहित जीव जाने मूर्त को।
बस उसतरह ही जीव बाँधे मूर्त पुद्गलकर्म को।। १७४ ।।

ॐ ह्रीं अमूर्तात्मनः मूर्तपौद्गलिककर्मबंधस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३९।।

अब भावबंध और द्रव्यबंध का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

प्राप्त कर उपयोगमय जिय विषय विविध प्रकार के।
रुष–तुष्ट होकर मुग्ध होकर विविधविध बंधन करे।। १७५ ।।
जिस भाव से आगत विषय को देखे–जाने जीव यह।
उसी से अनुरक्त हो जिय विविधविध बंधन करे।। १७६ ।।

ॐ ह्रीं भावबंध–द्रव्यबंधस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१४०।।

अब ''द्रव्यबंध का हेतु भावबंध ही है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

स्पर्श से पुद्गल बंधे अर जिय बंधे रागादि से।
जीव–पुद्गल बंधे नित ही परस्पर अवगाह से।। १७७ ।।
आतमा सप्रदेश है उन प्रदेशों में पुद्गला।
परविष्ट हों अर बंधें अर वे यथायोग्य रहा करें।। १७८ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यबंधस्य हेतु भावबंधैवइति निरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।१४१।।

अब ''भावबंध ही वास्तविकबंध है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

रागी बाँधें कर्म छूटें राग से जो रहित हैं।
यह बंध का संक्षेप है बस नियतनय का कथन यह।। १७९ ।।

ॐ ह्रीं भावबंधस्यैव निश्चयबंधत्वनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः .....।।१४२।।

अब मोह-राग-द्वेष भावों का विशेष स्पष्टीकरण करते हैं -

(हरिगीत)

राग-रुष अर मोह ये परिणाम इनसे बंध हो।
राग है शुभ-अशुभ किन्तु मोह-रुष तो अशुभ ही।। १८० ।।

पर के प्रति शुभभाव पुण पर अशुभ तो बस पाप है।
पर दुःखक्षय का हेतु तो बस अनन्यगत परिणाम है।। १८१ ।।

ॐ ह्रीं मोह-राग-द्वेषभावानां बंधत्वसाधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४३।।

अब स्व-पर का भेदविज्ञान कराते हैं -

(हरिगीत)

पृथ्वी आदि थावरा त्रस कहे जीव निकाय हैं।
वे जीव से हैं अन्य एवं जीव उनसे अन्य है।। १८२ ।।

जो न जाने इसतरह स्व और पर को स्वभाव से।
वे मोह से मोहित रहे 'ये मैं हूँ' अथवा 'मेरा यह'।। १८३ ।।

ॐ ह्रीं स्वपरभेदज्ञानप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१४४।।

अब पुद्गल परिणाम आत्मा का कार्य क्यों नहीं है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

निज भाव को करता हुआ निजभाव का कर्ता कहा।
और पुद्गल द्रव्यमय सब भाव का कर्ता नहीं।। १८४ ।।

जीव पुद्गल मध्य रहते हुए पुद्गलकर्म को।
जिनवर कहें सब काल में ना ग्रहे–छोड़े–परिणमे।। १८५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः पुद्गलपरिणामकार्यनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४५।।

अब बंध का स्वरूप निश्चय–व्यवहार की संधिपूर्वक स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

भवदशा में रागादि को करता हुआ यह आतमा।
रे कर्मरज से कदाचित् यह ग्रहण होता–छूटता।। १८६ ।।
रागादियुत जब आतमा परिणमे अशुभ–शुभ भाव में।
तब कर्मरज से आवरित हो विविध बंधन में पड़े।। १८७ ।।

ॐ ह्रीं निश्चय–व्यवहारनयेन बंधस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४६।।

अब ''यह आत्मा स्वयं ही बंध है'' इसे बताते हैं –

(हरिगीत)

सप्रदेशी आतमा रुस–राग–मोह कषाययुत।
हो कर्मरज से लिप्त यह ही बंध है जिनवर कहा।। १८८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वयमेवबंधत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४७।।

अब निश्चय–व्यवहार में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है, अपितु अविरोध ही है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

यह बंध का संक्षेप जिनवरदेव ने यतिवृन्द से।
नियतनय से कहा है व्यवहार इससे अन्य है।। १८९ ।।

ॐ ह्रीं निश्चय–व्यवहाराविरोधनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४८।।

अब ''अशुद्धनय से अशुद्धात्मा की और शुद्धनय से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

तन–धनादि में 'मैं हूँ यह.' अथवा 'ये मेरे हैं' सही।
ममता न छोड़े वह श्रमण उनमार्गी जिनवर कहें।। १९० ।।

पर का नहीं ना मेरे पर मैं एक ही ज्ञानात्मा।
जो ध्यान में इस भाँति ध्यावे है वही शुद्धात्मा।। १९१ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धाशुद्धात्मनः प्राप्तिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।१४९।।

अब ''ध्रुव होने से एकमात्र शुद्धात्मा ही उपलब्ध करने योग्य हैं और उसके अतिरिक्त देहादि सभी पदार्थ अध्रुव होने से उपलब्ध करने योग्य नहीं है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

इसतरह मैं आतमा को ज्ञानमय दर्शनमयी।
ध्रुव अचल अवलंबन रहित इन्द्रियरहित शुध मानता।। १९२ ।।

अरि–मित्रजन धन्य–धान्य सुख–दुख देह कुछ भी ध्रुव नहीं।
इस जीव के ध्रुव एक ही उपयोगमय यह आतमा।। १९३ ।।

ॐ ह्रीं ध्रुवत्वात् शुद्धात्मैव–उपलम्भनीयप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५०।।

अब ''शुद्धात्मा की उपलब्धि से मोहग्रन्थि का नाश होता है और मोहग्रन्थि के नाश से अक्षय अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

यह जान जो शुद्धात्मा ध्यावें सदा परमातमा।
दुठ मोह की दुर्ग्रन्थि का भेदन करें वे आतमा।। १९४ ।।

मोहग्रन्थी राग-रुष तज सदा ही सुख-दुःख में।
समभाव हो वह श्रमण ही बस अखयसुख धारण करें।। १९५ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदात् अक्षयसौख्यनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५१।।

अब ''आत्मा का ध्यान अशुद्धता का कारण नहीं होता'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

आत्मध्याता श्रमण वह इन्द्रियविषय जो परिहरे।
स्वभावथित अवरुद्ध मन वह मोहमल का क्षय करे।। १९६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानं अशुद्धत्वाकारणनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५२।।

अब सर्वज्ञ भगवान के ध्यान की चर्चा करते हैं -

(हरिगीत)

घन घातिकर्म विनाश कर प्रत्यक्ष जाने सभी को।
संदेहविरहित ज्ञेय ज्ञायक ध्यावते किस वस्तु को।। १९७ ।।

अतीन्द्रिय जिन अनिन्द्रिय अर सर्व बाधा रहित हैं।
चहुँ ओर से सुख-ज्ञान से समृद्ध ध्यावे परमसुख।। १९८ ।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञध्यानविषयनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५३।।

अब ''मोक्षमार्ग शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप ही है'' यह बताते हैं -

(हरिगीत)

निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने।
निर्वाण अर निर्वाणमग को नमन बारंबार हो।। १९९ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मनः उपलब्धिरूपमोक्षमार्गनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५४।।

अब आचार्यदेव ५वीं गाथा में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार निर्ममत्व में स्थित होकर ममता के त्याग का संकल्प करते हैं –

(हरिगीत)

इसलिए इस विधि आतमा ज्ञायकस्वभावी जानकर।
निर्ममत्व में थित मैं सदा ही भाव ममता त्याग कर।। २०० ।।

ॐ ह्रीं ममत्वत्यागसंकल्पनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५५।।

इसप्रकार अब प्रवचनसार के ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार का समापन होने जा रहा है। महाधिकार के अन्त में तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र कुल ३ छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

ज्ञेयतत्त्व के ज्ञान के प्रतिपादक जो शब्द।
उनमें डुबकी लगाकर निज में रहें अशब्द।। १० ।।

शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त कर जग को कर अब ज्ञेय।
स्वपरप्रकाशक ज्ञान ही एकमात्र श्रद्धेय।। ११ ।।

चरण द्रव्य अनुसार हो द्रव्य चरण अनुसार।
शिवपथगामी बनो तुम दोनों के अनुसार।। १२ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन-उपसंहारक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५६।।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञेयतत्त्व अधिकार की, पूजन अमल अनूप।
अब जयमाला में कहें, ज्ञेयतत्त्व का रूप।। १ ।।

ज्ञेयतत्त्व महाधिकार में, कहे तीन अधिकार।
पहला द्रव्य सामान्य है, दूजा द्रव्य विशेष।। २ ।।

'ज्ञान अर ज्ञेय विभाग' का, है तीजा अधिकार।
इन सबको संक्षेप में, जानो भले प्रकार।। ३ ।।

(रोला)

सब द्रव्यों में जो बातें समान होती हैं।
सबसे पहले उन बातों को ही बतलाते।
जो विशेषतायें होती विशेष द्रव्यों में।
फिर उनकी ही बोधगम्य बातें बतलाते।। ४ ।।

इसके बाद ज्ञान ज्ञेय में भेद बताते।
दोनों ही हैं पृथक्-पृथक् - ऐसा समझाते।।
सब अपने में लीन न कोइ कुछ करे किसी का।
जैनधर्म का मूल भेदविज्ञान कराते।। ५ ।।

सब द्रव्यों की सत्ता है उत्पाद-ध्रौव्य-व्यय।
सब द्रव्यों की सत्ता है गुण-पर्यय वाली।।
द्रव्य-क्षेत्र अर काल-भाव हैं न्यारे-न्यारे।
किसी अन्य के घर में कोइ न पाँव पसारे।। ६ ।।

अरे अपरिणामी होकर भी परिणामी हैं।
अपने-अपने परिणमनों के कर्त्ता हैं वे।।
अरे स्वयं के कर्त्ता-भोक्ता होने पर भी।
परद्रव्यों के रहते हैं वे सदा अकर्त्ता।। ७ ।।

अरे स्वयं को छोड़ अन्य सब ज्ञेयमात्र हैं।
पर अपना आतम तो ज्ञेय है ज्ञायक भी है।।
'परद्रव्यों को ज्ञेय न मानें' एक भूल है।
और ज्ञेय से अधिक जानना भूल दूसरी।। ८ ।।

'पर को जानूँ' – मात्र इसलिये ज्ञायक हूँ मैं।
यह तो समझो पर्वत जैसी बड़ी भूल है।।
'मैं अपने को जानूँ' – ज्ञायक इसलिये मैं।
मैं ही ज्ञायक एवं मैं ही स्वयं ज्ञेय हूँ।। ९ ।।

मैं अपने में स्वयं पूर्ण अपना स्वामी मैं।
मैं ही 'स्व' अर स्वयं पूर्णतः स्वामी भी हूँ।।
अर मेरा अस्तित्व नहीं है पर के कारण।
मैं जो कुछ हूँ वह सब ही अपने ही कारण।। १० ।।

न मैं पर का कार्य न पर का कारण हूँ मैं।
पर अकार्यकारण शक्ति का धारक हूँ मैं।।
अधिक कहूँ क्या मैं तो यह भी कह सकता हूँ।
मैं ही अपना ज्ञेय और अपना ज्ञायक हूँ।। ११ ।।

ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन का तो सार यही है।
ये ही सार है परमपूज्य जिनवाणी माँ का।।
यही सार है जिन आगम का परमागम का।
यही सार है परमानन्दी जिनशासन का।। १२ ।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ, ज्ञेयतत्त्व अधिकार।
आराधन से प्रगट हो, ज्ञानानन्द अपार ।। १८ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

४

चरणानुयोगसूचकचूलिका महाधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

ज्ञान–ज्ञेय विस्तार से, जाने विविध प्रकार।
अब चरण अनुयोग की, चर्चा का अधिकार।। १।।

(मनहरण कवित्त)

चरणानुयोग की सूचक है चूलिका।
उसके भी यहाँ चार अधिकार आये हैं।।
आचरण प्रज्ञापन मोक्षमार्ग प्रज्ञापन।
शुभोपयोग प्रज्ञापन नाम शुभ गाये हैं।।
पंचरत्न प्रज्ञापन चौथा अधिकार कहा।
इनमें चारित्र के प्रकार समझाये हैं।।
सबको समझकर भक्तिभाव पूर्वक।
पूजा भक्ति करने के भाव शुभ आये हैं।। २।।

(दोहा)

चरणानुयोग अधिकार की, पूजन परमानन्द।
भक्तिभाव से कर रहे, सब मिलकर सानन्द।। ३ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकार!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकार!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(अवतार)

जल

ज्यों जल हो अमल अनूप जल मल परिहारी।
त्यों आतम अमल अनूप मोहमल परिहारी।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। १ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

मुनिमन सम शीतल इष्ट चन्दन मलयागिर।
त्यों आतम शीतल शान्त मनहर मलयागिर।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। २ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

ये अक्षत अमल अखण्ड स्वयं में शोभित हैं।
आतम भी अमल अखण्ड अक्षत सा शोभे।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मन मोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। ३ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

ये सुमन सुगंधित संग सुरतरु से शोभें।
पर आतम विरहित गंध फिर भी मन मोहे।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक ।। ४ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

भूख शामक होता नैवेद्य क्षुधा से पीड़ित जग।
खाये विध-विध नैवेद्य भूख फिर भी जगमग।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। ५ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

मिथ्यातम का हो नाश चरण आचरणों में।
तमनाशक दीपक दिव्य समर्पित चरणों में।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। ६ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

दशदिश में महके धूप दश अंगी मनहर।
आतम आतम में मस्त गंध विरहित सुन्दर।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक।। ७ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

फल सरस सुगन्धित मिष्ट मोह लेते मन को।
पर चेतन अरस अगंध रुचे न चेतन को।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक ।। ८ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

यह बेशकीमती अर्घ्य चरणों में अर्पित।
हम चाहे मात्र अनर्घ्य अनन्त सुख से गर्भित।।
मन्दिर के शिखर समान चूलिका मनमोहक।
मुनिजन के परम पवित्र आचरण की द्योतक ।। ९ ।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय अनर्घ्यपदप्राप्तयेअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। चरणानुयोगसूचकचूलिका महाधिकार।।

(दोहा)

ज्ञान-ज्ञेय को जानकर, धर चारित्र महान।
शिवमग की परिपूर्णता, पावैं श्रद्धावान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

चरणानुयोग सूचक चूलिका की तत्त्वप्रदीपिका टीका लिखते हुए आचार्य अमृतचन्द्र जो प्रथम छन्द लिखते हैं, वह इसप्रकार है –

(दोहा)

द्रव्यसिद्धि से चरण अर, चरण सिद्धि से द्रव्य।
यह लखकर सब आचरो, द्रव्यों से अविरुद्ध।। १३ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-अविरुद्धचारित्रप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५७।।

।।आचरणप्रज्ञापनाधिकार।।

(दोहा)

अनागार आचरण से बनते श्रमण महान।
प्रज्ञापन आचरण को सुनो भविक धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

आचार्य अमृतचन्द्र इस गाथा को आरंभ करने के पहले पंचपरमेष्ठी का स्मरण करनेवाली इस ग्रन्थ के मंगलाचरण की पहली, दूसरी और तीसरी गाथा को उद्धृत करते हुये कहते हैं –

(हरिगीत)

सुर असुर इन्द्र नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत–शत नमन।। १ ।।
अवशेष तीर्थंकर तथा सब सिद्धगण को कर नमन।
मैं भक्तिपूर्वक नमूँ पंचाचारयुत सब श्रमणजन।। २ ।।
उन सभी को युगपत तथा प्रत्येक को प्रत्येक को।
मैं नमूँ विदमान मानस क्षेत्र के अरहंत को।। ३ ।।

ॐ ह्रीं अरहंत–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५८।।

अब आचार्यदेव श्रामण्य को धारण करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं –

(हरिगीत)

हे भव्यजन ! यदि भवदुखों से मुक्त होना चाहते।
परमेष्ठियों को कर नमन श्रामण्य को धारण करो।। २०१ ।।

ॐ ह्रीं श्रामण्यप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५९।।

अब ''दीक्षा धारण करने के पूर्व दीक्षार्थी को क्या–क्या करना चाहिये'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

वृद्धजन तिय–पुत्र–बंधुवर्ग से ले अनुमति।
वीर्य–दर्शन–ज्ञान–तप–चारित्र अंगीकार कर।। २०२ ।।
रूप कुल वयवान गुणमय श्रमणजन को इष्ट जो।
ऐसे गणी को नमन करके शरण ले अनुग्रहीत हो।। २०३ ।।

ॐ ह्रीं दीक्षाविधिप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६०।।

अब दीक्षित साधु का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

रे दूसरों का मैं नहीं ना दूसरे मेरे रहे।
संकल्प कर हो जितेन्द्रिय नग्नत्व को धारण करें।। २०४ ।।

ॐ ह्रीं दीक्षितसाधुस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६१।।

अब ''द्रव्यलिंग तथा भावलिंग'' का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

शृंगार अर हिंसा रहित अर केशलुंचन अकिंचन।
यथाजातस्वरूप ही जिनवरकथित बहिर्लिंग है।। २०५ ।।
आरंभ–मूर्छा से रहित पर की अपेक्षा से रहित।
शुध योग अर उपयोग से जिनकथित अंतरलिंग है।। २०६ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्यलिंग–भावलिंगप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६२।।

अब इस गाथा में यह बताते हैं कि दीक्षार्थी मुनिधर्म कैसे अंगीकार करता है –

(हरिगीत)

जो परमगुरु नम लिंग दोनों प्राप्त कर व्रत आचरें।
आत्मथित वे श्रमण ही बस यथायोग्य क्रिया करें।। २०७ ।।

ॐ ह्रीं मुनिधर्मप्रक्रियाप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं ....।।१६३।।

अब इन गाथाओं में यह कहते हैं कि अट्ठाईस मूलगुणों के शुभभाव में आनेवाले छेदोपस्थापक होते हैं –

(हरिगीत)

व्रत समिति इन्द्रिय रोध लुंचन अचेलक अस्नान व्रत।
ना दन्त–धोवन क्षितिशयन अर खड़े हो भोजन करें।। २०८ ।।
दिन में करें इकबार ही ये मूलगुण जिनवर कहें।
इनमें रहे नित लीन जो छेदोपथापक श्रमण वह।। २०९ ।।

ॐ ह्रीं छेदोपस्थापकश्रमणप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६४।।

अब ''निर्यापक आचार्य का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

दीक्षा गुरु जो दे प्रव्रज्या दो भेद युत जो छेद है।
छेदोपस्थापक शेष गुरु ही कहे हैं निर्यापका।। २१० ।।

ॐ ह्रीं निर्यापकश्रमणनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६५।।

अब इन गाथाओं में यह बताते हैं कि जब संयम छेद होता है तो उसका निराकरण किस विधि से होता है?

(हरिगीत)

यदि प्रयत्नपूर्वक रहें पर देहिक क्रिया में छेद हो।
आलोचना द्वारा अरे उसका करें परिमार्जन।। २११ ।।

किन्तु यदि यति छेद में उपयुक्त होकर भ्रष्ट हों।
तो योग्य गुरु के मार्गदर्शन में करें आलोचना।। २१२ ।।

ॐ ह्रीं संयमपरिमार्जनविधिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६६।।

अब ''मुनिराजों को छेद का आयतन होने से परद्रव्य का प्रतिबंध हेय है और स्वद्रव्य में प्रतिबंध उपादेय हैं'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

हे श्रमणजन! अधिवास में या विवास में बसते हुए।
प्रतिबंध के परिहारपूर्वक छेदविरहित ही रहो।। २१३ ।।

रे ज्ञान–दर्शन में सदा प्रतिबद्ध एवं मूलगुण।
जो यत्नतः पालन करें बस हैं वही पूरण श्रमण।। २१४ ।।

ॐ ह्रीं श्रामण्य परिपूर्णत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६७।।

अब इन गाथाओं में यह बताया जा रहा है कि अत्यन्त निकट के सूक्ष्म परद्रव्य का प्रतिबंध भी मुनिपने के छेद का आयतन होने से हेय ही है –

(हरिगीत)

आवास में उपवास में आहार विकथा उपधि में।
श्रमणजन व विहार में प्रतिबंध न चाहें श्रमण।। २१५ ।।

शयन आसन खड़े रहना गमन आदिक क्रिया में।
यदि अयत्नाचार है तो सदा हिंसा जानना।। २१६ ।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्धनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६८।।

अब ''अंतरंग और बहिरंग छेद के प्रकार'' कहते हैं –

(हरिगीत)

प्राणी मरें या ना मरें हिंसा अयत्नाचार से।
तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से।। २१७ ।।

ॐ ह्रीं अंतरंग-बहिरंगद्विविधछेदप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं ....।।१६९।।

अब ''अंतरंग छेद सर्वथा त्यागने योग्य है'' यह कहते हैं –

(हरिगीत)

जलकमलवत निर्लेप हैं जो रहें यत्नाचार से।
पर अयत्नाचारि तो षट्काय का हिंसक कहा।। २१८ ।।

ॐ ह्रीं अंतरंगछेदहेयत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं ...।।१७०।।

अब परिग्रह संबंधी अंतरंग छेद की बात करते हैं –

(हरिगीत)

बंध हो या न भी हो जिय मरे तन की क्रिया से।
पर परिग्रह से बंध हो बस उसे छोड़े श्रमणजन।। २१९ ।।

ॐ ह्रीं परिग्रहसंबंधीअंतरंगछेदनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः ....।।१७१।।

अब आचार्य अमृतचन्द्रदेव तत्त्वप्रदीपिका टीका में एक छन्द लिखते हैं; जिसमें वे कहते हैं कि इस संबंध में जो कुछ कहा जा सकता था, वह सबकुछ कह दिया है –

(दोहा)

जो कहने के योग्य है कहा गया वह सब्ब।
इतने से ही चेत लो अति से क्या है अब्ब।। १४ ।।

ॐ ह्रीं श्रामण्यप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७२।।

अब ''बहिरंग परिग्रह का निषेध अंतरंग परिग्रह का ही निषेध है'' यह बताते हैं – (हरिगीत)

यदि भिक्षु के निरपेक्ष न हो त्याग तो शुद्धि न हो।
तो कर्मक्षय हो किसतरह अविशुद्ध भावों से कहो।। २२० ।।

ॐ ह्रीं अंतरंग-बहिरंगपरिग्रहनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७३।।

अब उपधि एकान्तिक अंतरंग छेद है – यह बताते हुये उत्सर्ग मार्ग बताते हैं –

(हरिगीत)

उपधि के सद्भाव में आरंभ मूर्छा असंयम।
हो फिर कहो परद्रव्यरत निज आत्म साधे किसतरह।। २२१ ।।

ॐ ह्रीं उत्सर्गमार्गनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७४।।

अब किसी के कहीं कभी किसीप्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है; ऐसे अपवाद मार्ग का उपदेश करते हैं –

(हरिगीत)

छेद न हो जिसतरह आहार लेवे उसतरह।
हो विसर्जन नीहार का भी क्षेत्र काल विचार कर।। २२२ ।।

ॐ ह्रीं अपवादमार्गनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७५।।

अब अनिषिद्ध उपधि का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

मूर्छादि उत्पादन रहित चाहे जिसे न असंयमी।
अत्यल्प हो ऐसी उपधि ही अनिंदित अनिषिद्ध है।। २२३ ।।

ॐ ह्रीं अनिषिद्धउपधिस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७६।।

अब ''वस्तुधर्म तो उत्सर्ग मार्ग ही है, अपवाद मार्ग नहीं'', ऐसा बताते हैं –

(हरिगीत)

जब देह भी है परिग्रह उसको सजाना उचित ना।
तो किसतरह हो अन्य सब जिनदेव ने ऐसा कहा।। २२४ ।।

ॐ ह्रीं उत्सर्गमार्गैव वस्तुधर्म – इतिप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७७।।

अब अपवाद मार्ग में होनेवाली विशेष बातें समझाते हैं –

(हरिगीत)

जन्मते शिशुसम नगन तन विनय अर गुरु के वचन।
आगम पठन हैं उपकरण जिनमार्ग का ऐसा कथन।। २२५ ।।

ॐ ह्रीं विशेषरूपेण अपवादमार्गनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७८।।

अब अनिषिद्ध उपधि अर्थात् शरीर के पालन की विधि पर प्रकाश डालते हैं –

(हरिगीत)

इहलोक से निरपेक्ष यति परलोक से प्रतिबद्ध ना।
अर कषायों से रहित युक्ताहार और विहार में।। २२६ ।।

ॐ ह्रीं विशेषरूपेण अनिषिद्ध-उपधिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७९।।

अब युक्ताहारविहारी साक्षात् अनाहारविहारी ही है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

अरे भिक्षा मुनिवरों की एषणा से रहित हो।
वे यतीगण ही कहे जाते हैं अनाहारी श्रमण।। २२७ ।।

ॐ ह्रीं युक्ताहारविहारी अनाहारविहारी एव – इतिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८०।।

अब मुनिराजों के युक्ताहारविहारत्व को सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

तनमात्र ही है परिग्रह ममता नहीं है देह में।
शृंगार बिन शक्ति छुपाये बिना तप में जोड़ते।। २२८ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनः युक्ताहारविहारत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८१।।

अब युक्ताहारविहार को अधिक स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

इकबार भिक्षाचरण से जैसा मिले मधु-मांस बिन।
अधपेट दिन में लें श्रमण बस यही युक्ताहार है।। २२९ ।।

ॐ ह्रीं विशेषरूपेण युक्ताहारविहारीस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८२।।

अब उत्सर्ग और अपवादमार्ग की मैत्री को दिखाते हैं –

(हरिगीत)

मूल का न छेद हो इस तरह अपने योग्य ही।
वृद्ध बालक श्रान्त रोगी आचरण धारण करें।। २३० ।।

ॐ ह्रीं उत्सर्ग-अपवादमार्गमैत्रीनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८३।।

अब उत्सर्ग और अपवादमार्ग की मैत्री न रहे, विरोध रहे तो मुनिधर्म में सुस्थितपना नहीं रहेगा, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

श्रमण श्रम क्षमता उपधि लख देश एवं काल को।
जानकर वर्तन करे तो अल्पलेपी जानिये।। २३१ ।।

ॐ ह्रीं विशेषरूपेण उत्सर्ग-अपवादमार्गमैत्रीनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८४।।

अब आचार्य अमृतचन्द्रदेव चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक महाधिकार में समागत आचरण प्रज्ञापन अधिकार का समापन करते हुए तत्त्वप्रदीपिका टीका में एक छन्द लिखते हैं जिसका पद्यानुवाद यह है –

(मनहरण कवित्त)

उतसर्ग और अपवाद के विभेद द्वारा।
भिन्न-भिन्न भूमिका में व्याप्त जो चरित्र है।।
पुराणपुरुषों के द्वारा सादर है सेवित जो।
उसे प्राप्त कर संत हुए जो पवित्र हैं।।
चित्सामान्य और चैतन्यविशेष रूप।
जिसका प्रकाश ऐसे निज आत्मद्रव्य में।।
क्रमशः पर से पूर्णतः निवृत्ति करके।
सभी ओर से सदा वास करो निज में।। १५ ।।

ॐ ह्रीं उत्सर्ग-अपवादरूपचारित्रेण निजात्मद्रव्यस्थिरताप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८५।।

।। मोक्षमार्गप्रज्ञापनाधिकार ।।

(दोहा)

जिनध्वनि से निज आत्मा जो जाने वे जीव।
नित आतमरत अनुभवी रत्नत्रयी सदीव।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब आगमाभ्यास करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है।। २३२ ।।

ॐ ह्रीं आगमाभ्यासप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८६।।

अब ''आगमहीन श्रमण के कर्मों का क्षय संभव नहीं है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व–पर को नहिं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व–पर को नहिं जानते।। २३३ ।।

ॐ ह्रीं आगमाभ्यासाभावे कर्मक्षयाभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८७।।

अब ''चार प्रकार के चक्षुओं का निरूपण करते हैं – साधु बनने के लिये आगमचक्षु होना अनिवार्य है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

साधु आगमचक्षु इन्द्रियचक्षु तो सब लोक है।
देव अवधिचक्षु अर सर्वात्मचक्षु सिद्ध हैं।। २३४ ।।

ॐ ह्रीं चर्तुविधचक्षुप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८८।।

अब ''आगमरूप चक्षु से सभी कुछ दिखाई देता है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जिन–आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण–पर्यय सहित।
जिन–आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित।। २३५ ।।

ॐ ह्रीं सर्वप्रकाशक आगमचक्षुनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८९।।

अब ''आगमज्ञानपूर्वक–श्रद्धान–संयम की एकता ही मोक्षमार्ग है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जिनागम अनुसार जिनकी दृष्टि न वे असंयमी।
यह जिनागम का कथन है वे श्रमण कैसे हो सकें।। २३६ ।।

ॐ ह्रीं आगमज्ञान–तत्त्वार्थश्रद्धान–संयमयौगपद्यस्यैव मोक्षमार्ग – इतिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९०।।

अब ''ज्ञान-श्रद्धान-संयम की एकता के अभाव में मोक्षमार्ग घटित नहीं होता'', यह बताते हैं -

(हरिगीत)

जिनागम से अर्थ का श्रद्धान ना सिद्धि नहीं।
श्रद्धान हो पर असंयत निर्वाण को पाता नहीं।। २३७ ।।

ॐ ह्रीं आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयमाभावे मोक्षमार्गाभावप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९१।।

अब ''मुक्ति का साधकतम कारण तो आतमज्ञान ही है'', यह बताते हैं -

(हरिगीत)

विज्ञ तीनों गुप्ति से क्षय करें श्वासोच्छ्वास में।
अज्ञ उतने कर्म नाशे जनम लाख करोड़ में।। २३८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानमहिमाप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९२।।

अब ''आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान और संयमत्त्व का युगपतपना भी कुछ नहीं कर सकता'', यह बताते हैं -

(हरिगीत)

देहादि में अणुमात्र मूर्च्छा रहे यदि तो नियम से।
वह सर्व आगम धर भले हो सिद्धि वह पाता नहीं।। २३९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानशून्य आगमज्ञानादिनिरर्थकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९३।।

अब आत्मज्ञान सहित तीनों की सार्थकता सिद्ध करते हैं -

(हरिगीत)

तीन गुप्ति पाँच समिति सहित पंचेंद्रियजयी।
ज्ञानदर्शनमय श्रमण ही जितकषायी संयमी।। २४० ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानसहित आगमज्ञानादिसार्थकत्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९४।।

अब इस गाथा में यह बता रहे हैं कि उक्त मार्ग में चलनेवाले संत कैसे होते हैं –

(हरिगीत)

कांच–कंचन, बन्धु–अरि, सुख–दुःख; प्रशंसा–निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन–मरण में।। २४१ ।।

ॐ ह्रीं श्रमणस्य समभावनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९५।।

अब एकाग्रता लक्षणवाला श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग आत्मज्ञान सहित आगमज्ञान, तत्त्वश्रद्धान और संयतपने की एकरूपता में ही है – यह बताते हैं–

(हरिगीत)

ज्ञान–दर्शन–चरण में युगपत सदा आरूढ़ हो।
एकाग्रता को प्राप्त यति श्रामण्य से परिपूर्ण हैं।। २४२ ।।

ॐ ह्रीं परिपूर्णश्रमणस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९६।।

अब इस गाथा के बाद की तत्त्वप्रदीपिका टीका में आचार्य अमृतचन्द्र एक छन्द लिखते हैं; जिसका पद्यानुवाद इस प्रकार है –

(मनहरण कवित्त)

इसप्रकार जो प्रतिपादन के अनुसार।
एक होकर भी अनेक रूप होता है।।
निश्चयनय से तो मात्र एकाग्रता ही।
पर व्यवहार से तीनरूप होता है।।
ऐसे मोक्षमार्ग के अचलालम्बन से।
ज्ञाता–दृष्टाभाव को निज में ही बाँध ले।।
उल्लसित चेतना का अतुल विलास लख।
आत्मीकसुख प्राप्त करे अल्पकाल में।। १६ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९७।।

अब इन गाथाओं में पूरे अधिकार का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए एकाग्रता ही मोक्षमार्ग है और अनेकाग्रता मोक्षमार्ग नहीं है – यह स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

अज्ञानि परद्रव्याश्रयी हो मुग्ध राग–द्वेषमय।
जो श्रमण वह ही बाँधता है विविध विध के कर्म सब।। २४३ ।।
मोहित न हों जो लोक में अर राग–द्वेष नहीं करें।
नियम से वे श्रमण ही क्षय करें विध–विध कर्म सब।। २४४ ।।

ॐ ह्रीं एकाग्रतैव मोक्षमार्गः न तु अनेकाग्रता – इतिप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९८।।

।। शुभोपयोगप्रज्ञापनाधिकार ।।

(दोहा)

शुद्धोपयोगी श्रमण के जो होते शुभभाव।
वे ही शुभ उपयोग हैं भाषी श्री जिनराज।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब इस अधिकार की पहली गाथा में गौणरूप से शुभोपयोगियों को भी श्रमण बताया जा रहा है –

(हरिगीत)

शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब।। २४५ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगी–शुभोपयोगीश्रमण फलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९९।।

अब शुभोपयोगी मुनियों का स्वरूप और प्रवृत्तियाँ बतलाते हैं –

(हरिगीत)

वात्सल्य प्रवचनरतों में अर भक्ति अर्हत् आदि में।
बस यही चर्या श्रमणजन की कही शुभ उपयोग है।। २४६ ।।

श्रमणजन के प्रति बंदन नमन एवं अनुगमन।
विनय श्रमपरिहार निन्दित नहीं है जिनमार्ग में।। २४७ ।।

ॐ ह्रीं शुभोपयोगस्थितश्रमणस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२००।।

अब शुभोपयोगी साधुओं की विराधना रहित प्रवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

उपदेश दर्शन–ज्ञान पूजन शिष्यजन का परिग्रहण।
और पोषण ये सभी हैं रागियों के आचरण।। २४८ ।।
तनविराधन रहित कोई श्रमण पर उपकार में।
नित लगा हो तो जानना है राग की ही मुख्यता।। २४९ ।।

ॐ ह्रीं शुभोपयोगीश्रमणप्रवृत्तिनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः....।।२०१।।

अब ''विराधना सहित प्रवृत्ति अनगारों की नहीं, श्रावकों की ही होती है'', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमण वैयावृत्ति में छह काय को पीड़ित करें।
वह गृही ही हैं क्योंकि यह तो श्रावकों का धर्म है।। २५० ।।

ॐ ह्रीं श्रावकाणां विराधनासहितप्रवृत्तिप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०२।।

अब इस गाथा में शुभोपयोगी मुनिराजों द्वारा की जानेवाली प्रवृत्ति के विषय को दो भागों में विभाजित करते हैं –

(हरिगीत)

दया से सेवा सदा जो श्रमण–श्रावकजनों की।
करे वह भी अल्पलेपी कहा है जिनमार्ग में।। २५१ ।।

ॐ ह्रीं शुभोपयोगस्थितश्रमणप्रवृत्तिभेदनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०३।।

अब शुभोपयोगियों के द्वारा की जानेवाली वैयावृत्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

श्रम रोग भूखरु प्यास से आक्रान्त हैं जो श्रमणजन।
उन्हें लखकर शक्ति के अनुसार वैयावृत करो।। २५२ ।।
ग्लान गुरु अर वृद्ध बालक श्रमण सेवा निमित्त से।
निंदित नहीं शुभभावमय संवाद लौकिकजनों से।। २५३ ।।
प्रशस्त चर्या श्रमण के हो गौण किन्तु गृहीजन।
के मुख्य होती है सदा अर वे उसी से सुखी हो।। २५४ ।।

ॐ ह्रीं शुभोपयोगीश्रमणवैयावृत्तिस्वरूपनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०४।।

अब ''कारण की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

एकविध का बीज विध-विध भूमि के संयोग से।
विपरीत फल शुभभाव दे बस पात्र के संयोग से।। २५५ ।।
अज्ञानियों से मान्य व्रत-तप देव-गुरु-धर्मादि में।
रत जीव बाँधे पुण्यहीनरु मोक्ष पद को ना लहें।। २५६ ।।
जाना नहीं परमार्थ अर रत रहें विषय-कषाय में।
उपकार सेवा दान दें तो जाय कुनर-कुदेव में।। २५७ ।।

ॐ ह्रीं कारणवैपरीत्ये फलवैपरीत्यप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०५।।

अब ''अविपरीत फल तो अविपरीत कारण से ही होता है'' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

शास्त्र में ऐसा कहा कि पाप विषय-कषाय हैं।
जो पुरुष उनमें लीन वे कल्याणकारक किसतरह।। २५८ ।।

समभाव धार्मिकजनों में निष्पाप अर गुणवान हैं।
सन्मार्गगामी वे श्रमण परमार्थ मग में मगन हैं।। २५९ ।।

ॐ ह्रीं कारण-अवैपरीत्ये फल-अवैपरीत्यप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०६।।

अब उपर्युक्त बात को विशेषरूप से स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

शुद्ध अथवा शुभ सहित अर अशुभ से जो रहित हैं।
वे तार देते लोक उनकी भक्ति से पुणबंध हो।। २६० ।।

ॐ ह्रीं शुद्धाशुद्धभावफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०७।।

अब श्रमणाभासों के लिये सभी प्रवृत्तियों का निषेध करते हैं –

(हरिगीत)

जब दिखें मुनिराज पहले विनय से वर्तन करो।
भेद करना गुणों से पश्चात् यह उपदेश है।। २६१ ।।

गुणाधिक में खड़े होकर अंजलि को बाँधकर।
ग्रहण-पोषण-उपासन-सत्कार कर करना नमन।। २६२ ।।

विशारद सूत्रार्थ संयम-ज्ञान-तप में आढ्य हों।
उन श्रमणजन को श्रमणजन अति विनय से प्रणमन करें।। २६३ ।।

ॐ ह्रीं श्रमणाभासप्रवृत्तिनिषेधक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं....।।२०८।।

अब श्रमणाभास कैसे होते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

सूत्र संयम और तप से युक्त हों पर जिनकथित।
तत्त्वार्थ को ना श्रद्धहें तो श्रमण ना जिनवर कहें।। २६४ ।।

ॐ ह्रीं श्रमणाभासस्वरूपप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०९।।

अब श्रमणचर्या और परस्पर व्यवहार की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमणजन को देखकर विद्वेष से वर्तन करें।
अपवाद उनका करें तो चारित्र उनका नष्ट हो।। २६५ ।।

स्वयं गुण से हीन हों पर जो गुणों से अधिक हों।
चाहे यदि उनसे नमन तो अनंतसंसारी हैं वे।। २६६ ।।

जो स्वयं गुणवान हों पर हीन को वंदन करें।
दृगमोह में उपयुक्त वे चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।। २६७ ।।

ॐ ह्रीं परस्परश्रमणचर्याप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१०।।

अब लौकिकजनों का निषेध करते हुए लौकिकजनों का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

सूत्रार्थविद जितकषायी अर तपस्वी हैं किन्तु यदि।
लौकिकजनों की संगति न तजे तो संयत नहीं।। २६८ ।।

निर्ग्रन्थ हों तपयुक्त संयमयुक्त हों पर व्यस्त हों।
इहलोक के व्यवहार में तो उसे लौकिक ही कहा।। २६९ ।।

ॐ ह्रीं लौकिकजनस्वरूपपूर्वकनिषेधप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२११।।

अब सत्संग ही करने योग्य हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

यदि चाहते हो मुक्त होना दुखों से तो जान लो।
गुणाधिक या समान गुण से युक्त की संगति करो।। २७० ।।

ॐ ह्रीं सत्संगप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१२।।

अब इस अधिकार का समापन करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र तत्त्वप्रदीपिका टीका में एक छन्द लिखते हैं; जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(मनहरण)

इसप्रकार शुभ उपयोगमयी किंचित् ही।
शुभरूप वृत्ति का सुसेवन करके।।
सम्यक्प्रकार से संयम के सौष्टव से।
आप ही क्रमशर निरवृत्ति करके।।
अरे ज्ञानसूर्य का है अनुपम जो उदय।
सब वस्तुओं को मात्र लीला में ही लख लो।।
ऐसी ज्ञानानन्दमयी दशा एकान्ततः।
अपने में आप ही नित अनुभव करो।। १७ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानानन्दमयी आत्मानुभवप्रेरक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं .....।।२१३।।

।। पंचरत्न अधिकार ।।[१]

(दोहा)

भावलिंग के बिना यह द्रव्यलिंग संसार।
द्रव्य भाव दोनों मिले मुक्ति मुक्ति का द्वार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब पंचरत्न गाथाओं को आरम्भ करने के पहले आचार्य अमृतचन्द्रदेव मंगलाचरण के रूप में एक छन्द लिखते हैं; जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(मनहरण)

अब इस शास्त्र के मुकुटमणि के समान।
पाँच सूत्र निरमल पंचरत्न गाये हैं।।
जो जिनदेव अरहंत भगवन्त के।
अद्वितीय शासन को सर्वतः प्रकाशें हैं।।

१. शुभोपयोग अधिकार के समाप्त हो जाने के बाद शेष पाँच गाथाओं के समूह को आचार्य अमृतचन्द्र तत्त्वप्रदीपिका टीका में पंचरत्न नाम से अभिहित करते हैं।

अद्भुत पंचरत्न भिन्न-भिन्न पंथवाली।
भव-अपवर्ग की व्यतिरेकी दशा को।।
तप्त-संतप्त इस जगत के सामने।
प्रगटित करते हुये जयवंत वर्तो।। १८ ।।

ॐ ह्रीं अर्हत्शासने पंचरत्नप्रशंसक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१४।।

अब प्रथम गाथा में संसारतत्त्व के स्वरूप का उद्घाटन करते हैं –

(हरिगीत)

अयथार्थग्राही तत्त्व के हों भले ही जिनमार्ग में।
कर्मफल से आभरित भवभ्रमे भावीकाल में।। २७१ ।।

ॐ ह्रीं संसारतत्त्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१५ ।।

अब मोक्षतत्त्व का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

यथार्थग्राही तत्त्व के अर रहित अयथाचार से।
प्रशान्तात्मा श्रमण वे ना भवभ्रमे चिरकाल तक।। २७२ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षतत्त्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१६।।

अब मोक्षतत्त्व के साधनतत्त्व का उद्घाटन करते हैं –

(हरिगीत)

यथार्थ जाने अर्थ को दो विध परिग्रह छोड़कर।
ना विषय में आसक्त वे ही श्रमण शुद्ध कहे गये।। २७३ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षतत्त्वस्य साधनतत्त्वप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं ....।।२१७।।

अब शुद्धोपयोगी श्रमणों का अभिनन्दन करते हैं –

(हरिगीत)

है ज्ञान-दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है।
हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है।। २७४ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगी श्रमणफलनिरूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं ....।।२१८।।

अब पंचरत्न तथा प्रवचनसार ग्रन्थ की अन्तिम गाथा में शिष्यजनों को शास्त्रफल से जोड़ते हुए इस शास्त्र का समापन करते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमण–श्रावक जानते जिनवचन के इस सार को।
वे प्राप्त करते शीघ्र ही निज आत्मा के सार को।। २७५ ।।

ॐ ह्रीं प्रवचनसारशास्त्रफलप्ररूपक श्रीप्रवचनसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१९।।

जयमाला

(कुण्डलिया)

चरणचूलिका खण्ड की, पूजा परम पवित्र।
अब जयमाला में कहें, मुनिवर संत चरित्र।।
मुनिवर संत चरित्र परम पावन हितकारी।
जग प्रपंच से रहित जगत का मंगलकारी।।
सम्यग्दर्शन–ज्ञान सहित संयम की लतिका।
मुनीधरम की दर्पण है यह चरणचूलिका।। १ ।।

(मनहरण कवित्त)

यह चरणानुयोग सूचक जो चूलिका है।
यामें मुनिराज का स्वरूप समझाये हैं।।
शुद्ध परिणति और शुद्ध शुभ उपयोग।
तीन भाव उनके स्वरूप में समाये हैं।।
अनन्त अनुबंधी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान।
इन कषायभावों के अभाव रूप गाये हैं।।
शुद्ध परिणति के धारक हैं संतजन।
नगन दिगम्बर वेष अपनाये हैं।। २ ।।

आत्मा में लीन तब शुद्ध उपयोगी और।
वे ही संत जब शुभभावों में आते हैं।।
पढ़ें पढ़ावें और भक्तिभाव करते हैं।
वही संत शुभ उपयोगी कहलाते हैं।।
क्षण में शुभोपयोगी क्षण में शुद्धोपयोगी।
छठे-सातवें में नित आते और जाते हैं।।
ऐसे मुनिराज इस लोक में जगत पूज्य।
द्रव्यलिंग धारी भावलिंगी कहलाते हैं।। ३ ।।

आत्मध्यान और स्वाध्याय में मगन रहें।
वीतरागी सन्त सब स्वयं में समाये हैं।।
जग के प्रपंचों से रहते सदा ही दूर।
जगत के द्वन्द-फन्द घर छोड़ आये हैं।।
धर्मशाला मन्दिर के जीर्ण उद्धार के।
विविध विकल्प जाल में न उलझाये हैं।।
न करें-करावें अनुमोदन भी ना करें।
दूर रहते हैं सदा मन-वच-काय से।। ४ ।।

(हरिगीत)

यदि कामना है मुक्ति की श्रामण्य को धारण करो।
धरकर दिगम्बर वेष भवि मुनिधर्म को धारण करो।।
परिवार की अनुमतिपूर्वक सभी को संबोधकर।
अत्यन्त समताभाव से श्रामण्य को धारण करो।। ५।।

रे मुक्ति की प्राप्ति न हो बिन दिगम्बर श्रामण्य के।
न प्राप्त हो सर्वज्ञता बिन दिगम्बर श्रामण्य के।।

अनन्त दर्शन वीर्य सुख भी न मिले श्रामण्य बिन।
भवभ्रमण का ना अन्त हो दिगम्बर श्रामण्य बिन।। ६।।

मिथ्यात्व तीन कषाय विरहित परिणति हो नियम से।
प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में नित आत्म स्पर्शन करें।।
मूलगुण अठबीस धारण करें समताभाव से।
सम्पूर्ण जग से विमुख नित निज आत्म के सम्मुख रहें।। ७।।

जिनागम के गहन अध्ययन में निरन्तर रत रहें।
क्योंकि उनका आचरण सब जिनागम अनुसार है।।
जिनागम की उपेक्षा संभव नहीं मुनिराज के।
जिनागम ही अरे उनके ज्ञान का आधार है।। ८।।

मूलतः शुद्धोपयोगी ही श्रमण जिनवर कहें।
शुभोपयोगी कहे जाते जब रहें शुभभाव में।।
जिनागम पढ़ना पढ़ाना और रचना शास्त्र की।
इस ही तरह के कार्य करते श्रमणजन शुभभाव में।। ९।।

वे रहें शुभभाव में या आतमा के ध्यान में।
शुद्ध परिणति नित्य रहती निरन्तर मुनिराज के।।
दिगम्बरों के योग्य छटवें-सातवें गुणथान में।
रे शुद्ध परिणति रहे तीन कषायासद्भाव में।। १०।।

लौकिकजनों की संगति से दूर रहते संतजन।
और लौकिक कार्यों से दूर रहते सन्तजन।।
निर्ग्रन्थ हों पर जगत के व्यवहार में संलग्न हों।
वे सभी लौकिक ही कहे वे सदा ही उद्विग्न हों।। ११।।

गुणाधिक की करो संगति नियम से कल्याण हो।
गुणाधिक न मिलें तो समगुणों की संगति करो।।

गुणहीन की दुर्गुणी की संगति कभी भी न करो।
यदि चाहते हो शान्ति–सुख तो गुणी की संगति करो।। १२।।

'भोगसामग्री नहीं' – इसलिये जग में दुख नहीं।
मिथ्यात्व के कारण दुखी हैं सभी जन संसार में।।
इस तथ्य से परिचित सदा रहते दिगम्बर संतजन।
'भोग कैसे प्राप्त हों' – उपदेश देते हैं नहीं।। १३।।

'मिथ्यात्व का हो नाश कैसे?' यही समझाते सदा।
क्योंकि उसके नाश से ही जीव होते हैं सुखी।।
जब पाप ही हैं भोग सब अर भोगने से पाप हो।
जिस भाव से ये सब मिले वह भाव कैसे धर्म हो?।। १४।।

चतुर्गति परिभ्रमण होता है अरे जिस भाव से।
उस भाव का उपदेश श्री मुनिराज देवे किसतरह?।।
जिस भाव से हो परम सुख उस वीतरागी भाव का।
उपदेश देते हैं सदा सब वीतरागी सन्तजन।। १५।।

अरे जिनकी वृत्ति प्रवचनसार के अनुकूल है।
और जिनकी प्रवृत्ति इस जगत से प्रतिकूल है।।
इस चूलिका अनुसार जिनका परम पावन आचरण।
उन वीतरागी सन्तजन के चरण में शत–शत नमन।। १६।।

ॐ ह्रीं चरणानुयोगसूचकचूलिकामहाधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।।२१८।।

(दोहा)

दर्शन–ज्ञान–चरित्र अर, उनके धारक संत।
जो भवि ध्यावें ध्यान से, पावें भव का अन्त।। १७।।

इसप्रकार पूरण हुई, चरणचूलिका संत।
आराधन से प्राप्त हो, भवसागर का अंत।। १८।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

महा जयमाला

(दोहा)

जिनदर्शन के मर्म को, दिव्यध्वनि अनुसार।
युक्तिपूर्वक जो रखे, वह है प्रवचनसार।। १ ।।

(रोला)

प्रवचनसार महान ग्रन्थ है जिनशासन का।
एकमात्र आधार वस्तु के प्रतिपादन का।।
अधिक कहें क्या यह अद्भुत बेजोड़ ग्रन्थ है।
कुन्दकुन्द की प्रतिभा का इसमें निचोड़ है।। २ ।।

मोह क्षोभ विहीन परिणमन निज आतम का।
एकमात्र यह परिणति ही शुद्धोपयोग है।।
साम्यभाव का होना ही शुद्धोपयोग है।
एकमात्र शुद्धोपयोग ही परमयोग है।। ३ ।।

निज आतम में जमना-रमना परम ध्यान है।
जिसके फल में मिले अनन्तान्त ज्ञान है।।
अर अतीन्द्रिय सुख मिलता है जिसके फल में।
वह शुद्धोपयोग ही सचमुच परमधरम है।। ४ ।।

भूतकाल में होकर जो विनष्ट हो गईं।
अर भविष्य में जो पर्यायें होने वाली।।
सब द्रव्यों की अनुत्पन्न नष्ट पर्यायें।
जिनके दिव्य ज्ञान में झलकें वर्तमानवत।। ५ ।।

वे सर्वज्ञ जिनेश्वर सबको देखें-जानें।
नहीं किसी के कर्त्ता-धर्त्ता होते हैं वे।।
सहजभाव से ज्ञाता-दृष्टा ही रहते हैं।
नहीं किसी से कुछ भी लेते देते हैं वे।। ६ ।।

श्री सर्वज्ञदेव ही सच्चे सुख के भोक्ता।
पंचेन्द्रिय भोगों का सुख सुख, नहीं दुःख है।।
पंचेन्द्रिय के विषय भोग तो पाप रूप हैं।
पाप बंध के कारण बनते यदि भोगें तो।। ७ ।।

पंचेन्द्रिय का पिण्ड अरे यह सुन्दर तन है।
इससे तो अत्यन्त भिन्न ही यह चेतन है।।
जड़ तन हूँ मैं नहीं अरे मैं तो चेतन हूँ।
मैं जगवासी नहीं अरे मैं तो भगवन् हूँ।। ८ ।।

रागी-द्वेषी नहीं नहीं मैं केवलज्ञानी।
मैं तो ज्ञायकभाव रूप हूँ केवल ज्ञानी।।
मैं तो हूँ जीवत्व शक्ति का धारक केवल।
परिणमनों से पार परमप्रभु केवल ज्ञानी।। ९ ।।

गुणभेदों से भिन्न गुणमयी मैं अखण्ड हूँ।
परदेशों से भिन्न किन्तु परदेशमयी हूँ।।
पर्यायों से पार त्रिकाली ध्रुव आतम हूँ।
सब भेदों से भिन्न एक मैं परमातम हूँ।। १० ।।

ॐ ह्रीं प्रवचनसारपरमागमाय महाजयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१८।।

(दोहा)

आतम की आराधना एकमात्र है सार।
निज में मगन रहो सदा यह है प्रवचनसार।। ११ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

प्रवचनसार भक्ति

ग्रन्थ श्री प्रवचनसार महान...

करें हम पूजन मिलकर आन, खूब गावें इसके गुणगान।
भक्ति से करें सुमंगल गान, गूँज जावे सम्पूर्ण जहान।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। १ ।।

अरे रे मोह क्षोभ विहीन आत्मा के निर्मल परिणाम।
वही कहलाते धर्म महान अरे रे साम्यभावमय जान।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। २ ।।

धर्म शुद्धोपयोगमय जान प्राप्त हो ज्ञानानन्द महान।
अरे रे एकमात्र उपादेय अतीन्द्रिय सुख अतीन्द्रिय ज्ञान।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। ३ ।।

रागादिभाव हैं हेय और सारी दुनियाँ है ज्ञेय।
त्रिकाली ध्रुव निज आतम ध्येय, वही है एकमात्र उपादेय।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। ४ ।।

धर्म है दर्शन ज्ञान चारित्र मुक्ति का मारग परम पवित्र।
स्वयं में अपनापन है दर्श जानना ज्ञान ध्यान चारित्र।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। ५ ।।

पूर्ण स्वाधीन मुक्ति का मार्ग, अरे पर का नहिं कोई योग।
स्वयं का ज्ञान–ध्यान स्वाधीन मात्र पर है केवल संयोग।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। ६ ।।

इस महाग्रन्थ का मर्म, जानने वाले जाने धर्म।
स्वयं में जमे रमें जो जीव, क्षीण हो जावे उनके कर्म।।
ग्रंथ श्री प्रवचनसार महान..... ।। ७ ।।

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००
७. समयसार का सार	३०.००
८. गाथा समयसार	१०.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००
१३. प्रवचनसार का सार	३०.००
१४. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	२०.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००
१८. छहढाला का सार	१५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००
२०. वैराग्य	२५.००
२१. समयसार महामण्डल विधान	२५.००
२२. प्रवचनसार महामण्डल विधान	१०.००
२३. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	१५.००
२४. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
२५. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००
२६. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००
२७. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२०.००
२८. धर्म के दशलक्षण	२०.००
२९. क्रमबद्धपर्याय	२०.००
३०. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध)	२०.००
३१. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध)	१०.००
३२. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण)	३०.००
३३. बिखरे मोती	१६.००
३४. सत्य की खोज	२५.००
३५. अध्यात्म नवनीत	१५.००
३६. आप कुछ भी कहो	१५.००
३७. आत्मा ही है शरण	१५.००
३८. सुक्ति-सुधा	१८.००
३९. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००
४०. दृष्टि का विषय	१०.००
४१. गागर में सागर	७.००
४२. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००
४३. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	११.००
४४. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००
४५. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००

४६. युगपुरुष कानजीस्वामी	७.००
४७. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१५.००
४८. मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ : एक अनुशीलन	५.००
४९. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००
५०. निमित्तोपादान	६.००
५१. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
५२. मैं स्वयं भगवान हूँ	५.००
५३. ध्यान का स्वरूप	४.००
५४. रीति-नीति	४.००
५५. शाकाहार	३.००
५६. भगवान ऋषभदेव	४.००
५७. तीर्थंकर भगवान महावीर	३.००
५८. चैतन्य चमत्कार	४.००
५९. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
६०. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
६१. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
६२. अनेकान्त और स्याद्वाद	३.००
६३. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	६.००
६४. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
६५. मैं कौन हूँ	११.००
६६. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	१०.००
६७. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
६८. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
६९. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
७०. समयसार पद्यानुवाद	३.००
७१. योगसार पद्यानुवाद	१.००
७२. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
७३. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
७४. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
७५. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
७६. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
७७. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
७८. सिद्धभक्ति	१०.००
७९. अर्चना जेबी	१.५०
८०. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
८१. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
८२-८३. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	७.००
८४-८६. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१४.००
८७-८८. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	११.००
८९. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००
९०. समाधिमरण या सल्लेखना	५.००
९१. ये है मेरी नारियाँ	५.००